सहकारी वन प्रबन्धन की राजनीति

हिमाचल प्रदेश के कांगडा जिला क्षेत्र का एक अनुभव

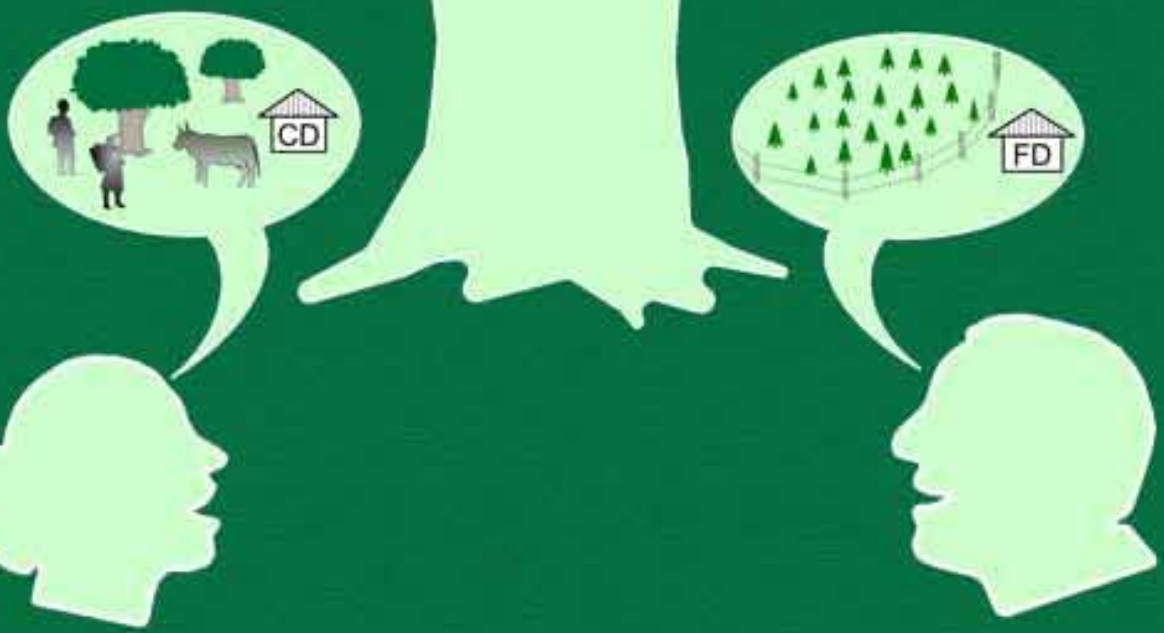

ICIMOD

Talking Points 3/02(H)

सहकारी वन प्रबन्धन की राजनीति

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला क्षेत्र का एक अनुभव

राजीव अहल

मार्च 2002
अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र (इसिमोड)
(काठमान्डू, नेपाल)

This book was originally published in English as '**The Politics of Cooperative Forest Management – The Kangra Experience, Himachal Pradesh**' in 2002, ISBN 92 9115 474 1

© सर्वाधिकार, २००३
अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र

प्रकाशक
अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र
पोष्ट बक्स नं. ३२२६
काठमाण्डू, नेपाल

टाईप डिजाइन
धर्मरत्न महर्जन

ISBN 92 9115 801 1

The views and interpretations in this paper are those of the author(s). They are not attributable to the International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD) or The Mountain Institute (TMI) and do not imply the expression of any opinion concerning the legal status of any country, territory, city or area of its authorities, or concerning the delimitation of its frontiers or boundaries.

हिमालय क्षेत्र में अपने वन संसाधनों के
टिकाऊ प्रबन्धन में जुटे अनगिनत
सामूदायिक वानिकी समूहों
को समर्पित

प्राक्कथन

हिन्दू कुश-हिमालय क्षेत्र के पूरे क्षेत्र में वन एवं अन्य संसाधनों का प्रबन्धन लोक हित के लिए अत्यावश्यक है, क्योंकि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग इस क्षेत्र में अपने दैनिक जीवन के लिए वनों पर निर्भर है । पहाड़ी क्षेत्र के लोगों के लिए वन संसाधनों का विनाश आने वाले समय में महाविपत्ति का कारण हो सकता है क्योंकि अभी तक बहुत से लोग जलाने की लकड़ी, निर्माण सामग्री, चारा व अन्य उत्पादों के लिए वनों पर आश्रित हैं । स्वस्थ वन संसाधन पहाड़ी क्षेत्रों के पर्यावरण की बेहतरी के लिए नितान्त आवश्यक हैं । बढ़ती हुई भू-विकृति, भू-स्खलन, बाढ़, नदियों के अनुप्रवाह में गाद का भरना, प्राकृतिक आवास का ह्रास, जैव विविधता का ह्रास, जल संसाधनों में कमी और यहां तक कि जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं के लिए वन आवरण का अभाव उत्तरदायी है । वन-संसाधनों का रख-रखाव एक चुनौती बन चुका है, विशेषकर जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती हुई आकांक्षाओं और पहुंच के साधनों में विकास से ऐसा हुआ है, क्योंकि इसके साथ निर्यात और अनुचित लाभ उठाने के अवसर बढ़ जाते हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू कुश-हिमालय के बहुत से क्षेत्रों में जहां वन संसाधनों को आमतौर पर परिरक्षित किया जाना होता था वहां इन संसाधनों का प्रबन्धन केन्द्र निर्देशित होता रहा और सरकारों ने संरक्षण और नियन्त्रण का काम अपने हाथ में ले लिया हांलाकि इससे सीमित सफलता ही हाथ लगी । हाल ही में वन प्रबन्धन की सोच में भारी बदलाव आया है । इस बात को अब भली प्रकार स्वीकारा गया है कि बढ़िया वन प्रबन्धन को सुनिश्चित करने के लिए उन लोगों को, जो इससे निकट का सम्बन्ध रखते हों अर्थात वनोंत्पादों के उपभोक्ता हों, उन्हें सक्रिय तौर पर सम्मिलित करना आवश्यक है जो निर्णय ले सकें, कार्य संचालन कर सकें और लाभान्वित भी हों । इस क्षेत्र के लगभग सभी देशों में लोक केन्द्रित वन नीतियों का प्रादुर्भाव हुआ है । विभिन्न धारण अधिकार-व्यवस्थाओं और लाभांश वितरण प्रणालियों के माध्यम से किसी न किसी रूप में अधिक से अधिक क्षेत्र को सामुदायिक प्रबन्धन के अर्न्तगत लाया

जा रहा है । इस क्षेत्र के लगभग सभी देशों में सांझा वन प्रबन्धन एक सफल योजना-कौशल के रूप में उभरा है ।

लोक समुदायों की, वन प्रबन्धन में सांझेदारी का प्रथम प्रयास जिला कांगड़ा में किया गया था, जो अब हिमाचल प्रदेश में है - कांगड़ा जिला में वन-सहकारी सभाएं 1940 में अस्तित्व में आई । इस दिशा में किए गए बाद के प्रयासों की तुलना में 1940 के दौरान बनी वन सहकारी सभाएं हर प्रकार के वन क्षेत्र के प्रबन्धन के लिए सक्षम थीं बेशक उन पर मुख्य उत्तरदायित्व उजड़े वन क्षेत्रों को पुर्नजीवित करने का था । आधुनिक नज़रिए के अनुसार वन-सहकारी सभाओं में प्रतिनिधित्व व समतापूर्ण प्रबन्ध की दृष्टि से बड़ी गम्भीर कमियां थी (1940 में यह कोई चिन्ता की बात नहीं थी) फिर भी वे उजड़े वन क्षेत्रों को पुर्नजीवित करने और गांव-समुदायों में स्वामित्व भावना और गर्वानुभूति विकसित करने में सफल रहीं - ये वन सहकारी सभाएं - 1971 में हिमाचल राज्य के पुर्नगठन के समय - उससे सम्बन्धित संगठनात्मक परिवर्तनों तथा वन विभाग की सामुदायिक वानिकी के प्रति उपेक्षा और समुदायों को अपने वनों के प्रबन्धन के बारे में निर्णय लेने की अनुमति देने की अनिच्छा का शिकार हो गई । इन वन सहकारी सभाओं का अस्तित्व - विवादास्पद है - यद्यपि - बहुत सी वैधानिक तौर अनिर्णय की स्थिति मे रहते हुए भी पर कार्य किए जा रही है ।

ऐतिहासिक तौर पर कांगड़ा की वन सहकारी सभाएं सामुदायिक वानिकी का लुभावना सबक सिखाती है जिससे उनके सुचारू रूप से कार्य करने या न कर पाने के कारणों पर प्रकाश पड़ता है -

भूतकाल के विश्लेषण से या इसी क्षेत्र में वन-सहकारी सभाओं के अतिरिक्त किए गए अन्य प्रयासों से तुलना करने पर बहुत सी समस्याएं उजागर हुई हैं यथा -

(क) सरकारी विभागों और उनके कर्मचारियों का रूढ़िवादी रवैया

(ख) समुदायों की प्रतिबद्धता और जनसहभागिता पर अविश्वास

(ग) वन, वन उपभोक्ता, और दूसरे परिभाषिक शब्दों की कानूनी परिभाषा और उनसे पैदा उलझाव ।

(घ) "सामुदायिक वानिकी" के विचार की व्याख्या

(ड) सरकारी वनों के परिरक्षण और पुर्नजीवन में समुदायों का प्रयोग-सरकार के लाभ के लिए

(च) वनों के प्रबन्धन को समुदायों को सौंपना ताकि लम्बी दौड़ में समुदायों की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके ।

यह सब और अन्य बहुत कुछ इस दस्तावेज में उपलब्ध है जो निम्न तत्वों पर प्रकाश डालता है यथा:

सामुदायिक वानिकी के इतिहास का विश्लेषण;
उनसे सम्बन्धित राजनैतिक परिस्थितियों का विकास;
कांगड़ा जिला में किए गए अन्य प्रयासों की स्थिति और वर्तमान अवस्था और वन-सहकारी सभाओं का भविष्य । इस दस्तावेज़ में उपलब्ध-विचार व जानकारी न केवल अब हिमाचल प्रदेश में लिए जा रहे वन-प्रबन्धन सम्बन्धी - निर्णयों के लिए उपयोगी है अपितु इस पूरे क्षेत्र के वन-वैज्ञानिकों और वन-नीति-निर्धारकों को अर्न्तदृष्टि भी प्रदान करती है ।

इसीमोड ने अपने प्राकृतिक संसाधन प्रभाग द्वारा पिछले कुछ वर्षों के दौरान हिन्दू-कुश हिमालय के पूरे क्षेत्र के देशों में सामुदायिक वानिकी के प्रसार के लिए सक्रिय रूचि ली है - और सामुदायिक वानिकी के, प्राकृतिक संसाधनों के टिकाऊ-उपयोग व प्रबन्धन के प्रति योगदान को उजागर किया है ।

हमने विभिन्न प्रक्रियाओं सम्बन्धी जानकारी एकत्र करके उसका प्रसार किया है साथ ही इस दिशा में काम करने वाले समूहों को एकत्रित करके विचार-विमर्श हेतु मंच प्रदान किया है ताकि उनकी साझेदारी से सामुदायिक वानिकी की सफलता की ओर योगदान हो सकें । इस प्रक्रिया में यह पुस्तक योगदान की एक और कड़ी है ।

यह विचार-उत्तेजक दस्तावेज़ है और हमें आशा है कि यह सामुदायिक वानिकी पर विचार विमर्श और क्रियान्वयन के लिए मसौदा उपलब्ध कराएगा जिससे सामुदायिक वानिकी को इस समस्त क्षेत्र में सफल बनाने में योगदान प्राप्त होगा ।

- अनुपम भाटिया

लेखक द्वारा प्रस्तावना

इस दस्तावेज में हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला की वन सहकारी सभाओं के अनुभवों की जांच की गई है । वन सहकारी सभाओं की स्थापना सांझे वन प्रबन्ध के शुरूआती प्रयोग के रूप में 1940 में की गई जो बाद में विवाद का विषय बना और अभी तक बना हुआ है । भूतकाल की प्रक्रियाओं और उपलब्धियों का ऐतिहासिक पुर्ननिरीक्षण वन सहकारी सभाओं और वनों की किस्मों सम्बन्धी मिली जुली जानकारी पर आधारित हैं । इस दस्तावेज में हाल ही में नीति परिवर्तनों का पुर्ननिरीक्षण किया गया है और भविष्य सम्बन्धी विवेचन योग्य विषयों पर चर्चा भी की गई है ।

यद्यपि कांगड़ा की वन सहकारी सभा परियोजना के साथ मेरा सम्बन्ध 1988 में शुरू हुआ पर उन तथ्यों की जांच का काम विस्तार से 1996 में मैंने शुरू किया ताकि उन्हें जनता की जानकारी में लाया जाए । जब इस अध्ययन का कार्य आरम्भ किया गया तो मैंने पाया कि हिमाचल प्रदेश सम्बन्धी लिखित ऐतिहासिक आंकड़े एवं तथ्य विशेषकर कांगड़ा वन सहकारी सभा परियोजना के बारे में बहुत कम उपलब्ध हैं । इससे बढ़कर ये अनुभव हुआ कि कांगड़ा जिला के हिमाचल प्रदेश में शामिल होने के बाद बहुत सी महत्वपूर्ण अधिसूचनाएं, अभिलेख और पत्राचार उपलब्ध न हो सके क्योंकि कांगड़ा जिला को पंजाब राज्य से स्थानान्तरित होकर हिमाचल प्रदेश में शामिल किया गया था। संभवत: कांगड़ा के हिमाचल में स्थानांतरण के दौरान वे कहीं खो गए ।

एक और बाधा यूँ पैदा हुई कि वन विभाग के पास कांगड़ा वन सहकारी सभाओं सम्बन्धी कोई समेकित अभिलेख उपलब्ध नहीं थे । तथापि सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) के कार्यालय से प्राप्त वन सहकारी सभाओं की पंजीकरण फाइलों में उस सम्बन्धी पत्राचार, निरीक्षण टिप्पणियां, झगड़ों के ब्यौरे उपलब्ध हो सके । इसके अतिरिक्त कुछ वन सहकारी सभाओं ने लकड़ी के सन्दूकों में अपने दस्तावेजों, प्रस्तावों और बैठकों की कार्यवाहियों को एवं पिछले 50 वर्षों के अभिलेखों को भी संभाल कर रखा था । मेरे इस शोध कार्य के लिए ये बहुमूल्य सम्पति सिद्ध हुई । वन सहकारी सभाओं के बहुत से सक्रिय नेताओं के साक्षात्कार द्वारा मौखिक तौर पर ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध

हुई । उपरोक्त स्रोतों के आधार पर मैं वन सहकारी सभाओं सम्बन्धी खाका बना सका और उसका विश्लेषण कर सका हूं ।

अपने अध्ययन के प्रथम पड़ाव तक मैं कांगड़ा में सदियों से प्रचलित वन प्रबन्धन के तरीकों, भूमि काश्तकारी प्रणालियों और उनकी इतिहास सम्बन्धी सोच विकसित कर सका । इसी भूमिका के आधार पर इस खोज की योजना बनी । मैंने इस सम्बन्धी साहित्य का सर्वेक्षण करने के बाद महत्वपूर्ण अधिकृत दस्तावेजों, बन्दोबस्त की रिपोर्टों और इससे पहले छपी पुस्तकों का अध्ययन किया। इसके बाद मैंने जिले का विस्तृत दौरा किया । इससे मैं वन सहकारी सभाओं को विभिन्न वर्गों में बांट सका । मैंने सभाओं के सक्रिय सदस्यों, वन विभाग और सहकारी सभाओं के निम्नस्तरीय कर्मचारियों के बहुत से साक्षात्कार लिए जिससे कांगड़ा वन सहकारी सभाओं के प्रयोग से सामने आने वाले विषयों को पहचाना । तदनन्तर काफी समय उपलब्ध अभिलेखों की जांच करने में लगा। इसी के आधार पर मैं महत्वपूर्ण मामलों और प्रश्नों को प्राथमिकता के आधार पर पहचान कर सभाओं के लिए एक प्रश्नोत्तरी तैयार कर सका । इसी प्रश्नोत्तरी को प्रयोग करते हुए एक दल ने प्रतिनिधि सभाओं का दौरा किया और सभाओं के सदस्यों तथा नेताओं से विस्तार पूर्वक प्राथमिक जानकारी एकत्रित की। इसी जानकारी को लेखबद्ध करने के लिए कोई भी सुझाव प्रस्तुत करने से पहले मैंने सांझे वन प्रबन्धन की एक बड़ी तस्वीर छानबीन के बाद तैयार करने की कोशिश की ।

मेरा उद्देश्य है कि इस दस्तावेज को सादी और गैर तकनीकी भाषा में प्रस्तुत किया जाए ताकि तथ्यों और यथार्थता से समझौता किए बिना इसे जन साधारण और विशेषज्ञों के समक्ष रखा जा सके । मेरी किसी व्यक्ति या संस्था को निन्दित करने की मंशा नहीं है अपितु उन्हें उसी तरह पेश करने की है जैसा कि उन्हें इस सन्दर्भ में मैंने देखा गया है ।

राजीव अहल,
पालमपुर, हिमाचल प्रदेश,
भारत ।

संक्षिप्त कार्यकारी विवरण

इस शोध पत्र में, हिमाचल प्रदेश की वन सहकारी सभाओं और भूतकाल की प्रक्रियाओं और मील पत्थरों (विकास अवस्थाओं) का पुनर्वलोकन करते हुए उनकी पूरी जांच की गई है । वन प्रबन्ध के बारे में पाठकों को समझने की सुविधा के लिए कांगड़ा में प्रचलित बन्दोवस्त और राजस्व पद्धति को भी शामिल किया गया है । जिनके प्रभाव स्वरूप वन सहकारी सभाओं और बाद के सहभागी वन प्रबन्ध (पी.एफ.एम.) जैसे प्रयोग किए गए ।

हिमालय के दूसरे क्षेत्रों की तरह कांगड़ा में लोगों की सामाजिक-आर्थिक नियति और राजनैतिक सामर्थ्य को आकार देने में वनों की मुख्य भूमिका है । वन प्रबन्ध में हुए परिवर्तन, लोगों के वनों के साथ सम्बन्धों को मौलिक रूप से पुनः परिभाषित करते हैं । ब्रिटिश नीतियों ने लोगों की, मुख्य वन क्षेत्रों तक पहुंच को, वनों को एकल प्रजाति के व्यापारिक वनों में परिवर्तित करके, सीमित कर दिया । उसी दौरान सरकार ने पहाड़ों के एक मुख्य व्यवसाय पशुचारण पर रोक लगा दी और इस तरह लोगों को व्यवस्थित कृषि के लिए बाध्य किया गया ।

वन विभाग अपनी राजस्व अभिमुख नीतियों द्वारा की गई भूमिका को समझे बिना, असीमांकित वनों में भूक्षरण व निर्वनीकरण के लिए अनियन्त्रित चरान और अवैध कटान को ही दोषी ठहराता रहा । वन संरक्षण और उसके साथ जुड़ी अपर्याप्त वित्तीय आय सम्बन्धी चिन्ताओं ने नई प्रबन्ध रणनीति को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत वन विभाग ने लोगों को वनों के संरक्षण की जिम्मेवारी सौंपना और उन्हें बिक्री से हुई आय का हिस्सा देना आरम्भ कर दिया।

1930-40 के दशक के अन्त में एक आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसरण में पंजाब सरकार ने वन विभाग को ऐसी योजना बनाने के लिए आदेश दिया जिसके अन्तर्गत अपनी वन सम्पदा का, गांव के लोग स्वयं, वन अधिकारियों के मार्गदर्शन तले, प्रबन्ध करने के योग्य बनें। 1940 में के.एफ.सी. एस. योजना औपचारिक रूप से स्वीकृत कर ली गई और इसके साथ 12 वर्ष की अवधि में 72 वन सहकारी सभाओं का गठन किया गया जिन्हें 2800 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के प्रबन्ध की जिम्मेवारी मिली । स्वतन्त्र भारत में, इस योजना को राजनैतिक इच्छाशक्ति का बल मिलना 1956 के बाद घट गया और 1961 में नई सभाओं का गठन न करने के लिए विशेष आदेश जारी किया गया ।

जब कांगड़ा 1971 में हिमाचल प्रदेश का भाग वन गया, वन विभाग ने, के.एफ.सी.एस. द्वारा अपने वनों का प्रबन्ध स्वयं करने के अधिकार के दावों को कानूनी वैधता को मान्यता देने से इन्कार कर दिया । यह आग्रह भी किया गया कि वनों का प्रबन्ध सरकारी कार्ययोजना के अनुसार वन विभाग के कर्मचारियों द्वारा ही किया जाए । परिणामस्वरूप इस योजना की कानूनी स्थिति के बारे भ्रमपूर्ण स्थिति बनी रही जिसकी आगामी परिणति यह हुई कि इस योजना के क्रियान्वयन से जुड़े सब विभागों ने सहभागी वन प्रबन्ध के इस प्रथम प्रयोग से

अपना समर्थन हटा लिया जिसे उन्होंने अभी तक स्वीकारा भी था और बनाए भी रखा था । इस स्थिति के होते हुए भी बहुत सी सभाएं आज दिन तक, कमजोर रूप से ही सही, अपनी कानूनी वैधता को, वन सहकारी सभा के रूप में अपने वर्तमान पंजीकरण पर आधारित करते हुए क्रियाशील रहीं हैं ।

यह प्रकाशन के.एफ.सी.एस. के गठन और प्रचालन सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों और नियमों की व्याख्या करता है और इनके क्रियाकलाप का विस्तृत विश्लेषण भी करता है । इसमें, संस्थागत रूप का चयन, सदस्यता और क्षेत्रों के चयन की कसौटी (मापदण्ड) और योजना में वित्तीय प्रणालियों का विकास, इन सब पर चर्चा की गई है । यह दस्तावेज इस बात का संकेत देता है कि इस प्रायोगिक पहल की मौलिक उपलब्धि यह रही है कि अधिकारों और जिम्मेवारियों के सन्तुलन को पुन: परिभाषित करते हुए सामुदायिक नियन्त्रण की व्यवहारिक प्रणालियों को पुन: स्थापित करने का प्रयास हुआ । यद्यपि के.एफ.सी.एस. की अधिसूचनाओं में 'लोगों की सहभागिता' जैसी उक्ति का जिक्र कहीं भी नहीं है, तथापि कार्ययोजना की तैयारी के लिए सभा और गांव वालों से परामर्श करने पर दिए गए बल से प्रतीत होता है कि उसमें पारम्परिक वन संरक्षण से हटकर परामर्श पर आधारित सहभागिता के लिए स्थान रखा गया था।

1940 में लोगों को वन सहकारी सभाओं में संगठित करने वाली सरकार द्वारा प्रवर्तित प्रक्रियाओं के विश्लेषण के महत्व पर लेखक द्वारा बल दिया गया है । लेखक ने यह भी ज्ञात करने की कोशिश की है कि नई संस्थाएं वास्तव में सामुदायिक आधार रखती थी या वन एवं सहकारिता विभाग द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऊपर से थोपी गई सुविधाजनक साधन मात्र थी । लेखक ने यह भी जानना चाहा है कि के.एफ.सी.एस. को सामुदायिक वन प्रबन्ध के रचनातन्त्र के रूप में, गांव के किन समूहों ने स्वीकार किया । उनकी सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि कैसी थी और स्थापित ढांचे कितने सहभागी-मूलक थे ।

के.एफ.सी.एस. ने कांगड़ा में विभिन्न श्रेणियों की भूमि का प्रबन्ध किया, कई प्रकार की वन प्रबन्धन पद्धतियों के तहत कार्य किया । ऐसा लगता है कि इसका मुख्य उद्देश्य वन क्षेत्रों को रकबा बन्दी द्वारा अनियन्त्रित चराई से बचाना था ।

के.एफ.सी.एस. के सदस्यों और प्रबन्ध समितियों का यह कहना कि उन्होंने वनों का प्रबन्ध वन विभाग से बेहतर ढंग से किया, सभाओं के वनों की गुणवत्ता को देखकर सच साबित होता है । अनौपचारिक रूप से वन विभाग के कर्मचारी भी इस बात से सहमति रखते है ।

नि:सन्देह, 1973 से, के.एफ.सी.एस. और वन विभाग के जमीनी स्तर के कर्मचारियों की भूमिकाएं , अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के कार्यक्षेत्र में दखलंदाज़ी पैदा करने वाले हो गए हैं । के.एफ.सी.एस. के वनों की सम्पति को, बिना के.एफ.सी.एस. के सदस्यों को मुआवज़ा दिये ले लिया गया है । के. एफ.सी.एस.के पहल के भविष्य, वर्तमान स्थिति, और भूमिकाओं के विषय में वर्तमान स्थिति भ्रान्तिपूर्ण बनी हुई है, समाधान ढूंढने से पहले, लेखक ने प्रयास किया है कि, सरकार, वनविभाग, सहकारिता विभाग और के.एफ.सी.एस. के रूप

में सभी दावेदारों द्वारा अख्तियार किए गए रुख और भूमिकाओं का विश्लेषण किया जाए ।

इस अध्ययन द्वारा वर्तमान स्थिति का परीक्षण करने का भी प्रयास किया गया है । जिसके अनुसार हि.प्र. सरकार का यह मानना है कि सहभागी वन प्रबन्ध का यह प्रयोग स्थगित-जीवंतता की स्थिति में है हालांकि के.एफ.सी.एस. सक्रिय और जीवित है । अपने साथ हुए व्यवहार के कारण क्रोधित है । खास कर जिस तरीके से एक तरफा कार्यवाही द्वारा राज्य ने उनके अस्तित्व और अधिकारों के आधार को ही निगल लिया है ।

के.एफ.सी.एस. को पुर्नजीवित करने का मुद्या अपने आप में महत्वपूर्ण है, यह हि.प्र. में सहभागी-टिकाऊ-वन-प्रबन्ध को सुनिश्चित एवं स्थापित करने के लिए सहयोगी वातावरण बनाने के व्यापक संघर्ष का महत्वपूर्ण पक्ष है ।

इस अध्ययन के अन्तिम अध्याय में हिमाचल प्रदेश में "सहभागी वन प्रबन्ध" का हाल का इतिहास, इसके भविष्य को समझने में सुविधा प्रदान करने के लिए दिया गया है । हिमाचल प्रदेश के पी.एफ.एम. नियमों का प्रारूप व वर्ष 1999-2000 में किए गये वन प्रभाग पुनर्वलोकन के साथ साथ अनेक विशेष परियोजनाओं पर चर्चा की गई है । इसका विश्लेषण करते हुए लेखक ने देखा है कि कुछ केन्द्रीय विषय हैं जो सभी सहभागी वन प्रबन्ध प्रयोगों में विद्यमान हैं यथा : अस्थाई या समयबद्ध स्वरूप; रकबे बन्द करना और वनीकरण द्वारा नष्ट प्राय वन क्षेत्रों का संरक्षण व प्रबन्ध करने के लिए गांव स्तरीय अस्थायी संस्थाएं बनाना । गैर वानिकी सम्पदा स्थापित करने और वनीकरण के लिए जिससे अस्थायी तौर पर पास के संरक्षित वनों पर दबाव घटे। परोक्ष रूप से वैतनिक मजदूरी उपलब्ध होने का लाभ प्रदान करना सांझेपन की अवधारणा जिसके अन्तर्गत गांव समितियों द्वारा वन विभाग से अधिक जिम्मेवारी की भूमिका लेना और वास्तविक नियन्त्रण और दीर्घकालिक लाभों को वन विभाग के लिए छोड़ना भी इसका लक्ष्य रहा है ।

इस तरह वन विभाग वर्तमान में पी.एफ.एम. को विदेशी सहायता आर्कषित करने के लिए अथवा नियन्त्रण व पहुंच से वंचित किए जाने से, समुदायों की, उनकों वनों के प्रति विमुखता इसके कारण संचित दबाव को हल्का करने के लिए, मुख्य तौर पर एक साधन के रूप में प्रयोग कर रहा है । इससे लगता है कि वन विभाग ने पी.एफ.एम. द्वारा, वन प्रबन्ध प्रणालियों में प्रमाणित की गई सीखों को अपनी कार्य विधि में समाविष्ट नहीं किया है ।

इस अध्ययन की समाप्ति के.एफ.सी.एस. के भविष्य पर एवं हिमाचल प्रदेश में टिकाऊ वन प्रबन्ध के भविष्य के लिए उभरते सवकों पर चर्चा के साथ की गई है । सहभागी वन प्रबन्ध को मुख्यधारा में लाना, वन भूमि के उपयोग के ढगों में परिवर्तन, वन भूमियों का पुन: वर्गीकरण, व्यक्तिगत अधिकारों को सामुदायिक अधिकारों में बदलना, वन आधारित टिकाऊ जीविकाओं की सशक्त व्याख्या करना, जैसे कई मौलिक परिवर्तन सुझाए गए हैं । के.एफ.सी.एस. की क्रिया-विधि, गांव समुदायों की टिकाऊ ढंग से वनों को पुर्नजीवित व प्रबन्धित करने की क्षमता को ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत आय को उत्पन्न करने और सामाजिक विकास करने की सामर्थ्य को भी प्रमाणित करती है ।

आभार

मैं, मि. एग्बर्ट पैलिंग, भूतपूर्व महानिदेशक (इन्टरनैशनल सैन्टर फॉर इन्टिग्रेटेड माउंटेन डेवलमेंन्ट) (इसीमोड) का इस शोध कार्य को पूरा करने के लिए सहूलियत और सहायता प्रदान करने के लिए धन्यवाद करता हूँ । मैं इसीमोड के सान्झा प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन प्रभाग में समन्वयक श्री अनुपम भाटिया का भी धन्यवाद करता हूँ, जिनका विश्वास रहा कि हिमालय और विशेषकर हिमाचल के विकृतिग्रस्त शिवालिक क्षेत्रों में सान्झी वन व्यवस्था के आड़े आने वाले मामलों को तय करने से पहले कांगड़ा की वन सहकारी सभाओं पर शोध कार्य करना आवश्यक है । उनकी बहुमूल्य अर्न्तदृष्टि, टिप्पणियां व धैर्य मुझे बहुत सहायक रहा । श्री जोगिन्द्र सिंह गुलेरिया के वन सहकारी सभाओं के इतिहास सम्बन्धी गहन जानकारी और उसके पेचीदा कानूनी पहलुओं के ज्ञान से सतत सहायता मिलती रही । उनका उत्साह सदैव अटल व्यवहारिक बल प्रदान करता रहा । मैं विशेषकर धन्यवाद करता हूँ, प्रो. हेन्स विनोल्ड का जिनके सुझाव और विश्लेषण अन्तिम दस्तावेज के केन्द्र बिन्दु को सुस्पष्ट करने में सहायक हुए । मैं श्री पमीन कटोच का भी धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने क्षेत्रीय शोधकार्य की देखरेख की और खोई जानकारियों को खोज निकालने के लिए अनथक कार्य किया । वन, सहकारिता और राजस्व विभागों के कर्मचारियों का भी धन्यवाद करता हूँ जिनसे समय-समय पर सहायता मिलती रही । मैं कांगड़ा की वन सहकारी सभाओं के सदस्यों का और अन्य कईयों का भी धन्यवाद करता हूँ जिनके नाम ज्ञात नहीं और जिन्होंने इस शोधकार्य को पूरा करने में सहयोग दिया है और जानकारियों को प्राप्त करने के लिए की गई पूछताछ में असीम धैर्य दिखाया है । नवरचना के सदस्यों के साथ विचार विमर्श में बहुत बार भ्रमजाल को दूर करने में सहायता मिली है । इस पुस्तक के पहले अंग्रेजी संस्करण का हिन्दी अनुवाद लोक शिक्षण संस्थान द्वारा श्री वीरेन्द्र शर्मा, श्री कुलभूषण उपमन्यु व सुश्री कोमल शर्मा के अथक परिश्रम से हुआ है, जिनका मैं धन्यवाद करता हूँ ।

इस मेहनत को में अपने माता - पिता के चरणों में एक भेंट के रुप में अर्पित करता हूं । अन्त में मैं अपनी पत्नी मन्जू का भी धन्यवाद करना चाहूँगा जिन्होंने विद्वान बनने का प्रयास कर रहे एक क्रियाशील कार्यकर्त्ता, जिसे इस

कार्य का कोई औपचारिक प्रशिक्षण भी न था, और एक ऐसे पति को, जो अक्सर घर सब्जी लाना भूल जाता और बजाए इसके एक अतिरिक्त कागजों का ढेर लेकर घर पहुंचता, को सहर्ष झेला है ।

पाठकों की टिप्पणियों और आलोचनाओं का स्वागत है ।

राजीव अहल

शब्दावली

अन्त्योदय	–	निर्धनों में अति निर्धन
बजरी	–	कंकड़
वन-माफी	–	सन् 1860 में लोगों की भूमि चाय बागान के लिए लेती बार विशेष गांव समुदायों को दी गई रियायतें जिसके अन्तर्गत जिलाधीश की न्यासिता के अधीन मिट्टी और पेड़ों पर गांव वासियों की मलकीयत का प्रावधान था ।
वन-सरकार	–	वन-भूमि जो वन विभाग के नियंत्रण में निहित हो ।
बरतन दार	–	वे लोग जिन्हें पररक्षित वनों पर जो दूसरों के हों, (यथा वन विभाग के हों) उपयोग अधिकार हों ।
करोड़	–	सौ लाख
सीमाङ्कित व संरक्षित वन	–	ऐसे वन जिनमें पेड़ों पर सरकार का अधिकार या बर्तनदारों के अधिकार सुरक्षित थे। मिट्टी पर लोगों का अधिकार सुरक्षित था; उस वन भूमि का कोई अन्य प्रयोग नहीं किया जा सकता हो; और 1/4 से 1/3 भूमि को पुर्नरूत्पादन के लिए बन्द किया जा सकता हो।
देवता कमेटी	–	धार्मिक कमेटी
दरबार	–	लोगों की सभा
गैर मुमकिन	–	काश्त के अयोग्य भूमि
घराट	–	अनाज पीसने के लिए जल-चलित पारम्परिक चक्की
ग्राम पंचायत	–	लोक-स्वायत-प्रशासन के लिए गांव के स्तर पर चयनित-संस्था-जिसे केवल पंचायत भी कहा जाता है ।
खेवट दार	–	वे लोग जो एकमात्र या सान्झे सम्पति अधिकार के आधार पर विशेष अधिकार प्राप्त हो (जैसे सान्झा-सम्पति-संसाधनों पर)
लाख	–	सौ हजार

लम्बरदार	–	गांव में राजस्व एकत्र करने के लिए पारम्परिक कानूनी तौर पर नियुक्त व्यक्ति
महिला मण्डल	–	एक अधिकारिक महिला संस्था, जिसकी सभी गांवों में कमेटियां हों ।
मलकीयत शामलात	–	वह सार्वजनिक भूमि जिसे राजस्व विभाग द्वारा टैक्स लगा दिया गया और निजी भूमि में बदल दिया गया,
मौजा	–	राजस्व विभाग की ऐसी इकाई जिससे कुछ छोटी-2 बस्तियां हों और काश्त योग्य भूमि के टुकड़े हों, बाशिन्दों के आस-पास के बन्जर क्षेत्रों पर अधिकार अपरिभाषित और अलिखित हों, मिट्टी व वन भूमि की मलकीयत बाशिन्दों की सान्झा मलकीयत संस्था को सौंपी गई हो- सारे मौजा का लगान एक मुश्त सरकार द्वारा आंका जाता है और उसकी अदायगी उस संस्था की सान्झी जिम्मेदारी होती है ।
पटवारी	–	गांव स्तर पर राजस्व कर्मचारी
राखा	–	वन-रक्षक
आरिक्षत वन	–	सरकार की संपत्ति जिसे पूर्णाधिकार प्राप्त हो, जिसमें उपभोक्ताओं को उपभोग करने का अधिकार प्राप्त न हो ।
संघर्ष समिति	–	समर्थक-समूह/समिति/संस्था (आरिक्षत वन) पूर्वत: सरकार की मलकीयत, जिसमें वर्तनदारों को कोई अधिकार प्रदत्त नहीं ।
सान्झी वन योजना	–	सहभागी वन प्रबन्धन योजना जो लगभग सान्झा वन प्रबन्धन की तरह ही है - पर इस के लिए वित्तीय प्रबन्ध हिमाचल सरकार द्वारा बजट में प्रावधान करके किया गया है - और यह वर्ष 1998-99 में चालू की गई ।
शामलात टीका	–	मौजा के अन्तर्गत टीका जिसमें सारी भूमि शामलात हों।
शामलात	–	सार्वजनिक भूमि जिस पर बरतनदारों को विविध प्रकार के अधिकार हों ।

तहसील – ब्रिटिश हकूमत के अधीन निम्नतम प्रशासनिक इकाई जो कुछ मौजों को मिलाकर बनती है और उसका तहसीलदार प्रशासनिक व राजस्व शीर्ष अधिकारी होता था कुछ तहसीलों को मिलाकर जिला बनता था ।

टीका – थोड़े से निवासियों की बस्ती जो गांव या मौजा की संज्ञा पाने अयोग्य हों ।

अवर्गीकृत वन – ऐसे वन जिनमें पेड़ों पर सरकार का अधिकार हो और मिट्टी पर लोगों का एवं उसे बिना लोगों की सहमति के बिना बन्द नहीं किया जा सकता ।

सीमाङ्कित
संरक्षित वन – इनमें लगाए गए और अपने आप पैदा हुए पेड़ों पर सरकार का और मिट्टी पर लोगों का अधिकार होता है उसमे काश्त की आज्ञा जिलाधीश द्वारा दी जाती है अधिकार प्राप्त लोगों की सहमति के बिना बन्द नहीं किया जा सकता । इस प्रकार के वनों में चरान बन्द नहीं किया जाता ।

वन अन्दोलन – स्थानीय समुदायों द्वारा, वन सम्बन्धी मामलों में विरोध प्रदर्शन ।

वन–पंचायत – वन प्रबन्ध के लिए स्थानीय क्षेत्र की चुनी हुई संस्था ।

वारिसी – उपभोग का पैतृक अधिकार जिसे गिरवी रखा जा सकता हो व पुनः प्राप्त किया जा सकता हों ।

वाजिबुल अर्ज – गांव का प्रशासनिक अभिलेख जो बन्दोवस्त के दस्तावेज में दर्ज हो

जमींदार – भूमिपति किसान जो सरकार को लगान देते हों और तदनुरूप अधिकार मौजा के संसाधनों (यथा–जंगल व सिंचाई के लिए बहते पानी) पर रखते हों ।

संकेताक्षर

ए.आर.	–	असिस्टैन्ट रजिस्ट्रार (सहायक पंजीकार)
बी.एम.	–	वन माफी
सी.डी.	–	को–ऑपरेटिव डिपार्टमैन्ट (सहकारी विभाग)
सी.एफ.	–	कन्सरवेटर ऑफ फारेस्ट (अरण्यपाल)
सी.पी.आर.	–	कामन प्रापर्टी रिसोर्सिस (सार्वजनिक सम्पति)
डी.एफ.आई.डी.	–	डिपार्टमैन्ट फॉर इन्टरनैशनल डिवेल्पमैन्ट (यू के – भूतपूर्व ओ.डी.ए.)
डी.एफ.ओ.	–	डिस्ट्रिक फारेस्ट आफिस/आफिसर (जिला वनाधिकारी या जिला वन कार्यालय)
डी.पी.एफ	–	डिमार्केटिक प्रोटेक्टड फारेस्ट (सीमांकित परिरक्षित वन)
ई.सी.	–	एक्सेक्यूटिव कमेटी (कार्यकारिणी समिति)
एफ.डी.	–	फारेस्ट डिपार्टमैन्ट (वन विभाग)
एफ.एस.आर.	–	फारेस्ट सैक्टर रिव्यू (वन क्षेत्र पुनरावलोकन)
जी.वी.	–	जनरल बॉडी (प्रधान समिति)
जी.ओ.	–	गर्वनमैन्ट आर्डर (सरकारी आदेश)
जी.ओ.आई.	–	गर्वनमैन्ट ऑफ इंडिया (भारत सरकार)
जी.पी.	–	ग्राम पंचायत
जी.टी.जैड.	–	गैशिल शैफ्ट फर टैक्नीशे जुसा मिनारबीट (जर्मन तकनीकी सहकारी)
एच.पी.	–	हिमाचल प्रदेश
एच.पी.एफ.पी.	–	एच.पी. फारेस्ट्री प्रोजेक्ट (हिमाचल प्रदेश वन परियोजना)
जे.एफ.एम.	–	जॉइन्ट फारेस्ट मैनेजमैन्ट (सान्झा वन प्रबन्धन)
आई.जी.सी.पी.	–	इण्डो जर्मन चंगर प्रोजेक्ट (भारत सरकार चंगर परियोजना)
इसीमोड	–	इन्टरनैशनल सैन्टर फॉर इन्टेग्रेटिड माऊन्टेन डिवेल्पमैन्ट (अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र)
आई.जी.डी.पी.	–	इण्डो जर्मन धौलाधार परियोजना (भारत जर्मन धौलाधार परियोजना)

आई.आर.एम.पी.	–	इन्टेग्रेटिड रिसोर्स मैनेजमैन्ट प्लान (एकीकृत संसाधन प्रबन्ध योजना)
के.एफ.सी.एस.	–	कांगड़ा फारेस्ट को-ऑपरेटिव सोसाइटी (कांगड़ा वन सहकारी सभा)
एम.ऐ.एस.एल.	–	मीटर्स अबव सी लैवल (समुद्र तल से ऊंचाई मीटरों में)
एम.सी.	–	मैनेजमैन्ट कमेटी (प्रबन्ध समिति)
एम.एम.	–	महिला मण्डल
एम.एस.	–	मलकीयत शामलात
एन.जी.ओ.	–	नॉन गर्वनमैन्ट आर्गेनाइजेशन (गैर सरकारी संस्था)
एन.आर.एम.	–	नैचुरल रिसोर्स मैनेजमैन्ट (प्राकृतिक संसाधन प्रबन्ध)
एन.टी.एफ.पी.	–	नॉन टिम्बर फारेस्ट प्रोड्यूस (गैर इमारती वन उत्पादन)
पी.एफ.एम.	–	पार्टीसिपेट्री फारेस्ट मैनेजमैन्ट (सहभागी वन प्रबन्ध)
पी.डब्ल्यू.	–	प्राइवेट वेस्ट लैन्ड (निजी बन्जर भूमि)
आर.एफ.	–	रिजर्वड फारेस्ट (आरक्षित वन)
आर.एस.	–	रूपीज़ (रूपये)
एस.एफ.एम	–	सस्टेनेवल फारेस्ट मैनेजमैन्ट (टिकाऊ वन प्रबन्ध)
एस.वी.वाई.	–	सान्झी वन योजना
टी.डी.	–	टिम्बर डिस्ट्रीब्यूशन (इमारती लकड़ी का वितरण)
ट्रू को.	–	ट्रस्ट एण्ड कॉन्फीडैन्स (भरोसा और विश्वास)
यू.एफ.	–	अनक्लास्ड फारेस्ट (अवर्गीकृत वन)
यू.पी.एफ.	–	अनरिमार्केटिड प्रोटेक्टेड फारेस्ट (असीमांकित परिरक्षित वन)
वी.डी.सी.	–	विलेज डिवेल्पमैन्ट कमेटी (ग्राम विकास समिति)
वी.ई.डी.एस.	–	विलेज इको डिवेल्पमैन्ट सोसाइटी (ग्राम वन विकास समिति)
वी.एफ.डी.एस.	–	विलेज फारेस्ट डिवेल्पमैन्ट सोसाइटी (ग्राम वन विकास सभा)
वी.एल.आई.	–	विलेज लैबल इन्स्टीट्यूशन (ग्राम स्तरीय संस्था)
वी.एल.आर.के.	–	वन लगाओं रोजी कमाओं
डब्ल्यू.पी.	–	वर्किङ्ग प्लान (कार्य योजना)

विषय वस्तु

प्राक्कथन
लेखक द्वारा प्रस्तावना
संक्षिप्त कार्यकारी विवरण
आभार
शब्दावली
संकेताक्षर

1. **जिला कांगड़ा : एक पर्यवलोकन**
   - भूमिका
   - वन प्रबन्धन की प्रणालियां
   - वन संसाधनों की स्थिति
2. **कांगड़ा वन सहकारिता प्रयोग**
   - संकल्पना
   - कांगड़ा वन सहकारी सभा परियोजना का पर्यवेक्षण
   - नीति कार्य प्रणालियां और इतिहास
3. **संस्थागत व्यवस्था**
   - वन सहकारी सभाओं के प्रबन्धन सिद्धान्त
   - कांगड़ा वन सहकारी सभा परियोजना का प्रवर्तन (आरम्भ)
4. **सहकारी सभाओं का विश्लेषण**
   - नीति और उद्देश्य
   - संस्थागत विश्लेषण
   - वित्तीय व्यवस्थाएं
5. **प्रबन्धकीय दावेदार संस्थाओं के बीच अलगाव प्रवृति**
   - राज्य सरकारों की भूमिका
   - वन विभाग की भूमिका
   - सहकारी विभाग की भूमिका
   - कांगड़ा वन सहकारी सभाओं की भूमिका
6. **भविष्य की सम्भावनाएं**
   - वर्तमान परिदृश्य
   - हिमाचल प्रदेश में सान्झा वन प्रबन्धन का हाल का इतिहास
   - चल रही योजनाएं और गतिविधियां
   - हिमाचल प्रदेश के सान्झा वन प्रबन्धन के इतिहास से चेतावनियां/सीख

संदर्भिका
परिशिष्ट

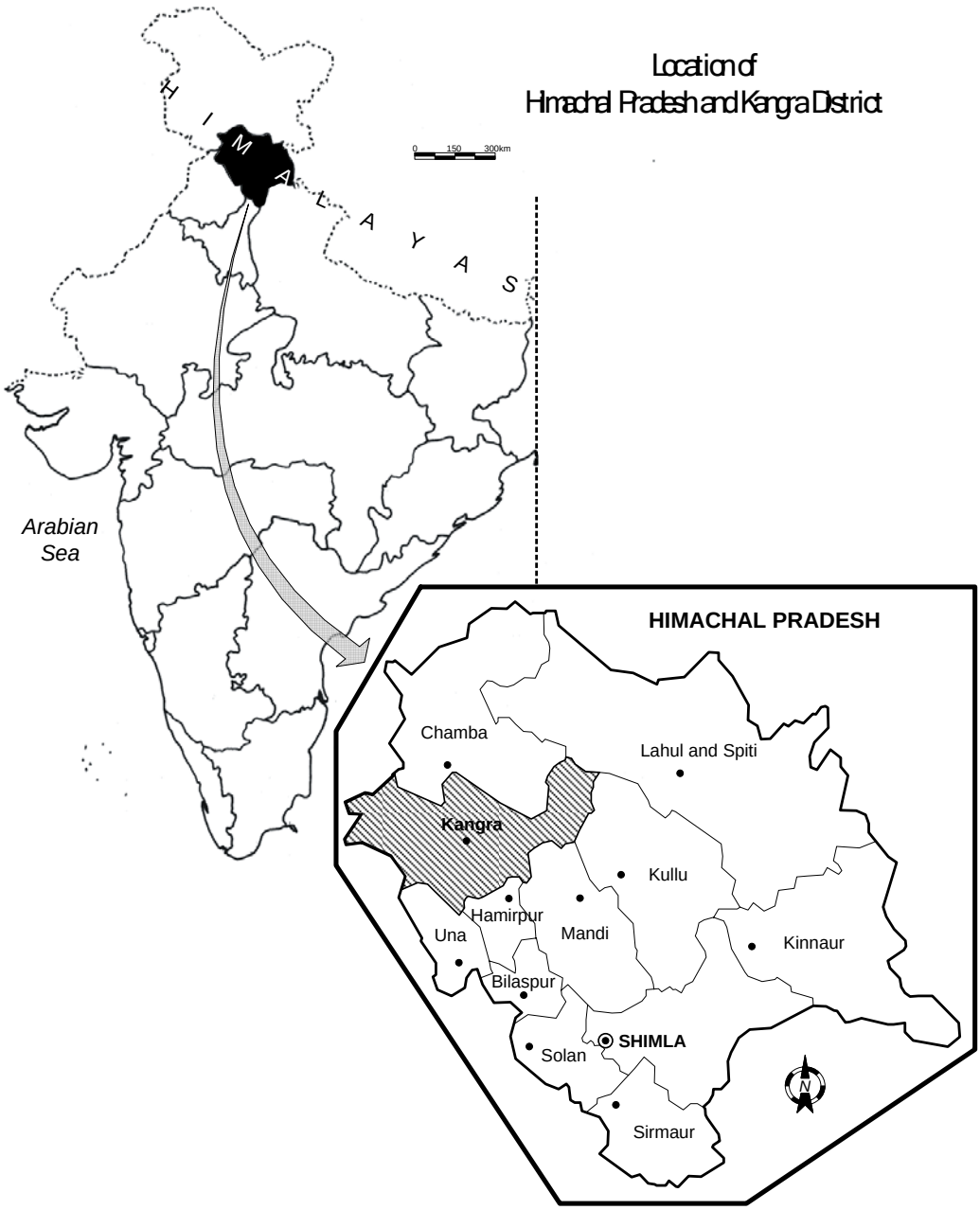

Location of
Himachal Pradesh and Kangra District
0 150 300km
H I M A L A Y A S
Arabian Sea
HIMACHAL PRADESH
Chamba
Lahul and Spiti
Kangra
Kullu
Hamirpur
Mandi
Una
Kinnaur
Bilaspur
SHIMLA
Solan
Sirmaur
N

1

कांगड़ा: एक पर्यावलोकन

भूमिका

कांगड़ा जिला हिमाचल प्रदेश का सबसे ज्यादा जनसंख्या वाला जिला है। इसे पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग 128 कि.मी. लम्बी और 58 कि.मी. चौड़ी घाटी दो भागों में विभाजित करती है । समुद्र तल से इस घाटी की ऊंचाई 350 मीटर से लेकर 6975 मीटर तक है । इस सारी घाटी का पानी ब्यास नदी में पहुंचता है । इस घाटी की उत्तरी सीमा पर एक विशालकाय बर्फ से ढकी दीवार रूपी पर्वत श्रंखला में भव्य धौलाधार है ।यह पर्वत श्रंखला दक्षिणी ढलाने घाटी के हरे भरे उपजाऊ खेतों में आकर समाप्त होती हैं । आरम्भ से ही इस क्षेत्र के विभिन्न जाति समूह पहाड़ी भाषा की कई उप-भाषाएं बोलते हैं ।

कांगड़ा के वन प्रबन्धन की भूमिका को समझने के लिए यहां की प्रचलित भूव्यवस्था और राजस्व पद्धतियों को समझना जरूरी है । हिन्दू राज्यों के आदर्श स्वरूप में आरम्भिक शासन काल में भूमि का स्वामित्व राजा में निहित रहता था । वास्तविक सम्पति अधिकार तदपि पैतृक-रूढ़िगत उपयोग अधिकार की शक्ल में होते थे । इन्हें लगभग सम्पति की तरह ही गिरवी रखा और छुड़ाया जा सकता था । इन्हें वारिसी कहते थे । इसके साथ-साथ वारिसी अधिकारों के अतिरिक्त प्रत्येक परिवार को विशेष कर मौनसून के महीनों में आसपास के जंगलों और चरागाहों पर रूढ़िगत उपयोग के अधिकार प्राप्त थे ।

जाहिर है कि भू-सम्पति के अधिकार तो काश्तकारों के नाम नहीं थे किन्तु जोत वाली भूमि पर उनके अधिकार स्पष्ट रूप से परिभाषित थे, सदियों के उपभोग के आधार पर पास के जंगलों पर भी उनके अधिकार उल्लिखित थे ।

ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों पर यह प्रणाली लागू नहीं थी, विस्तृत जंगल और चरागाह क्षेत्रों में लम्बे काल तक इन क्षेत्रों में केवल दूर-दूर तक चरान कराने वाले चरवाहों को ही अधिकार प्राप्त थे ।

जिस प्रकार का प्रशासनिक ढांचा ब्रिटिश राज ने ब्रिटेन की राजस्व-आवश्यकताओं की पूर्ति और भारत के शोषण के लिए बनाया था, उसमें भूमि पर स्वामित्व स्पष्ट रूप से निहित करना और राजस्व प्रणाली को औपचारिक रूप देना आवश्यक था । ब्रिटिश भूमि-सम्बन्धी नीतियों के अनुसार भू-व्यवस्था की प्रक्रिया आरम्भ हुई, भूमि का सीमाङ्कन किया गया व व्यक्तिगत प्रयोग में आने वाली भूमि को निजी भूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया । जंगल और चारागाह वाली भूमि जिस तक गांव समुदायों की पहुंच थी और उसके उत्पादों में उनका भाग-परिभाषित था - शामलात भूमि कहलाई । उस पर पारम्परिक रूढ़िगत अधिकारों को औपचारिक रूप दिया गया । गांव से दूर स्थित ऐसे जंगल जो इमारती लकड़ी व घुमन्तु चरान के लिए सार्वजनिक संसाधन संग्रह कहलाते थे, उन्हें गांव समुदायों को प्राप्त कम-ज्यादा अधिकार के आधार पर विभिन्न नाम दिए गए । वारिसी-भू-स्वामी औपचारिक तौर पर भू-स्वामी बन गए और कांगड़ा में पहली बार सम्पति पर निजी स्वामित्व को देखा गया ।

लगान निर्धारित व इक्ट्ठा करने का पारम्परिक ढंग विभिन्न क्षेत्रों में अलग - अलग तरह का था । उत्पादन के एक चौथाई से लेकर आधे भाग तक का हिस्सा राजा का होता था । जिसका निर्णय भूमि की उत्पादकता, सिंचाई सुविधाओं व अन्य कारणों के आधार पर होता था । ब्रिटिश शासन ने लगान नगदी के रूप में वसूल करना शुरू किया, जिसका पहाड़ों की आर्थिक अवस्था पर कमर तोड़ बोझ पड़ा । क्योंकि यहां की अर्थव्यवस्था में नकद पैसे की कमी होती थी जिससे मात्र जीवन निर्वाह ही सम्भव हो पाता था । मैदानी क्षेत्रों की तुलना में कांगड़ा क्षेत्र की भूमि की काफी कम उत्पादकता की दृष्टि से यह लगान राशि महत्वपूर्ण नहीं थी ।इससे ब्रिटिश सरकार ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त यह अनुमान लगा लिया कि पहाड़ी क्षेत्र भू-राजस्व-लाभ इतना नहीं दे सकता जिससे प्रशासनिक खर्चों की पूर्ति हो सके ।

ब्रिटिश सरकार का ध्यान देवदार, खैर व चील (जिसे कांगड़ा के बाहर के क्षेत्रों में चीड़ की संज्ञा दी जाती है) के विस्तृत क्षेत्र में फैले जंगलों की ओर आकृष्ट हुआ क्योंकि इनका इमारती लकड़ी के रूप में व्यापारिक दोहन किया जा सकता था ।

लगान की नकद वसूली करने के परिवर्तन के साथ ब्रिटिश सरकार ने अब निजी तौर पर काश्त की गई गांव की तमाम भूमि पर एक मुश्त आंके गए लगान की वसूली का जिम्मा भू-स्वामी किसानों पर सामूहिक रूप से डाल दिया । जबकि ऐसी राजस्व व्यवस्था के लिए किसानों का सह-स्वामित्व संस्था जैसा आचरण आवश्यक था । इस नये सामुदायिक व्यवहार के लिए कोई संस्थागत रचना तन्त्र खड़ा नहीं किया गया, यद्यपि सार्वजनिक भूमि का निजीकरण देखने में समानता वादी लगता था । पर समुदायों का जाति श्रेणियों में बंटा होने के कारण गांवों में सान्झे-स्वामित्व भावना का स्तर अति निम्न था । इसके कारण कुलीन वर्ग के भू-स्वामियों का, आर्थिक और सामाजिक तौर से कमजोर जातियों पर नियन्त्रण दृढ़ हो गया ।

आरम्भिक ऐतिहासिक वृतान्त बताते हैं कि घुमन्तु-पशु-चरागाही का विकास प्राकृतिक संसाधनों के वैकल्पिक उपयोग के रूप में हुआ । इससे नाजुक और सीमित कृषि भूमि पर निर्भरता को विविधतापूर्ण आजीविका का आधार प्राप्त हुआ । इन पशु-चरागाही में कबीलों के पास पशुओं के बड़े बड़े रेबड़ होते थे और वे इन्हें सर्दियों में घाटी, और अन्य मौसमों में पहाड़ी के स्थायी चरागाहों पर चुगाते थे । वनों में चराई के इन अधिकारों को पांरपरिक वारिसी के रूप में मान्यता दी गई थी । 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों की रूचि, इमारती लकड़ी और व्यापारिक वानिकी में अत्यधिक बढ़ गई, क्योंकि इसमें बेहतर कमाई की संभावना थी । यद्यपि वनों पर चराई का दबाव ज्यादा नहीं था, फिर भी अंग्रेज वन भूमि को चराई के दबाव से मुक्त कराना चाहते थे ।

चराई टैक्स की नगद वसूली, रेवड़ों के आकार पर नियन्त्रण और घुमन्तु पशु पालकों को एक स्थान पर बसने व काश्तकार बन जाने के लिए प्रोत्साहित करने जैसे कदम उठाकर चराई को हतोत्साहित किया गया ।

वन प्रबन्धन की पद्धतियां

हिमाचल के अन्य भागों की तरह कांगड़ा की पहाड़ियों में भी वन, लोगों की सामाजिक-आर्थिक नियति और राज्य की राजनैतिक शक्ति का निर्माण और निर्धारण करने में प्रमुख भूमिका निभाते थे । वन प्रबन्धन की पद्धतियों में बदलाव के चलते, लोगों का उनके वनों के साथ सम्बन्ध, मूलभूत रूप में, नए तरीके से परिभाषित हुआ । 1846 में जब अंग्रेजों ने कांगड़ा पर अधिकार कर लिया, वे भूमि व वनों के उपयोग की पेचीदा पद्धतियों को देखकर चकरा गए। जो जमीनें राजाओं की मलकीयत थी वे चूक से ही राज्य की सम्पति बन गई। इस प्रकार वनों को उपायुक्त के नियन्त्रण में दे दिया गया ।

"मौजा" जो छोटे-2 गांवों का समूह होता था, राजस्व के लिए बुनियादी इकाई माना गया । मौज़ा के भीतर की तमाम ज़मीनों और निवासियों के बर्तनदारी जंगलों को सह-स्वामित्व संस्था के नाम कर दिया गया । यह सह-स्वामित्व संस्था मौज़ा के निवासियों के इक्ट्ठे से बनती थी ।

शुरू में सरकार ने वन सम्पति पर सामान्य अधिकार ही अपने पास रखे। जिसके अन्तर्गत इमारती लकड़ी पर सरकार का अधिकार था, हां, गांव वासियों को कृषि की जरूरतों के लिए लकड़ी व ईंधन लेने का अधिकार था । ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए सरकार ने बड़े पैमाने पर बड़े बड़े भवन बनाने का काम, देशभर में रेलमार्गों का जाल बिछाने के साथ साथ आरम्भ किया । इन दोनों कार्यो में इमारती लकड़ी की भारी आवश्यकता थी । वे वन जो पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त किस्म की इमारती लकड़ी उपलब्ध करा सकते थे, हिमालय की ढलानों पर स्थित थे । ब्रिटिश सरकार ने फिर वन भूमि पर नियन्त्रण की प्राथमिकताओं को निर्धारित करना शुरू किया । सन 1853 तक वन क्षेत्रों की मिट्टी पर लोगों का अधिकार था और अपने आप उगे पेड़ों की वास्तविक मलकीयत सरकार के पास थी । अब किसी प्रकार की औपचारिक घोषणा के बिना, सामुदायिक वनों को छोड़ कर समस्त वन क्षेत्रों का प्रबन्धन व नियन्त्रण सरकार ने अपने हाथ में ले लिया[1] ।

कांगरा वन सहकारी सभा के अरला सलोह वन

सन् 1870 में वन विभाग के गठन के साथ ही वन दोहन का कार्य संस्थागत बन गया । सरकार ने 6,500 हैक्टयर से भी अधिक वन क्षेत्र को संरक्षित घोषित किया और उसमें तर्क यह था कि "कुछ वनों को लोगों के अधिकारों के कारण उन पर पड़ रहे भार से मुक्त करना आवश्यक है ।" दूसरे शब्दों में लोगों के हित - में लोगों से बचाना, परन्तु इस तथ्य को अनदेखा किया गया कि हजारों वर्षो से स्थानीय-समुदायों ने अपने जंगलों का सफल प्रबन्ध किया है । इन संरक्षित वनों में लोगों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था, और इसके बदले में प्रभावित समुदायों को उनके गांवों के समीपस्थ वन उसी मात्रा में दिए गये और उसके साथ विशेष धन राशि और भू-रियायतें भी प्रदान की गई ।

आरम्भिक-बन्दोवस्त अधिकारी लोक समुदायों के वनों से सम्बन्धों के प्रति संवेदनशील थे किन्तु नये वन अधिकारी वैज्ञानिक वानिकी के सिद्धान्तों का अनुसरण करने लगे, उनका मानना था कि वन ऐसे संसाधन हैं जिन से होने वाली आय, यथा इमारती लकड़ी व राजस्व को उच्चतम सीमा पर पहुंचाया जाना चाहिए । वे सभी वन जिनमें ऐसे पेड़ थे, जिनसे इमारती लकड़ी उपलब्ध

नहीं होती, उन्हें बन्जर का नाम दिया गया और इस तरह उनकी भू-संरक्षण, जल संरक्षण व वन्यजीवों को आवास प्रदान करने की क्षमता जैसे पहलुओं को दूसरे दर्जे का महत्व दिया गया ।

नए वन अधिनियम पास करके सरकार ने अपने इरादों को कानूनी बल प्रदान किया और वर्ष 1897 तक लगभग 5500 हैक्टयर वन क्षेत्र सीमाङ्कित संरक्षित वन अधिसूचित कर दिया गया-जिसके लिए वन विभाग पूरी तरह जिम्मेवार था । इस प्रकार के वनों में पेड़ों पर सरकार का अधिकार होता था, किन्तु उपभोक्ताओं के अधिकारों को संरक्षित रखा जाता था । मिट्टी पर लोगों का अधिकार था । इस वन भूमि का कोई और प्रयोग नहीं किया जा सकता था और इस का 1/4 से 1/3 भाग पुनरूत्पादन हेतु बन्द किया जा सकता था । वन एवं चरागाहों को बड़े पैमाने पर व्यापारिक वनों में परिवर्तित कर दिया गया । सरकारी वनों के सघन दोहन के लिए छोटी-मोटी मजदूरी उपलब्ध कराने के कारण वन ठेकेदार गांव की अर्थ-व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बन गए । वन-मज़दूरी जैसे कार्य में रूचि लेने के कारण गांव समुदाय विभाजित हो गए । इससे वनों के व्यापारीकरण में निहित सरकारी स्वार्थ का विरोध दबता गया ।

अन्य आर्थिक परिवर्तनों में कांगड़ा के पर्वतीय क्षेत्रों का मैदानों की दमकती बाजार अर्थ-व्यवस्था से जोड़ना और स्थानीय सरकारी दफ्तरों की विस्तृत संरचना द्वारा निर्वाह के नए साधन व अवसर उपलब्ध कराना शामिल थे । कांगड़ा के धनी वर्गो ने पहाड़ी कृषि की परिसीमाओं की प्रतिक्रिया में वैकल्पिक विविधापूर्ण जीवन-निर्वाह का आधार विकसित किया । उन्होंने कृषि के अतिरिक्त लाभ कमाने के विकल्पों के बीच ऊंचे दर्जे की गतिशीलता और जोखिम उठाने की शक्तिशाली योग्यता के बूते पर पहाड़ी अर्थ व्यवस्था के मुद्रीकरण का पूरा पूरा लाभ उठाया ।

इस तरह से उन्होंने राज्य के हितों को बढ़ावा दिया और साथ ही गांव की अर्थव्यवस्था पर अपनी पकड़ को अधिक मजबूत किया । मूलत: मध्यस्तरीय कृषक जातियों को वनों के उपयोग व पहुंच में आई कमी का अधिकतम नुकसान हुआ । यद्यपि ये जातियां जनसंख्या का दो तिहाई भाग थी, लेकिन

जिला भर में बिखरी होने के कारण इन नीतियों का सशक्त विरोध करने के लिए संगठित न हो सकी ।

कांगड़ा में वन प्रबन्धन की यह एक महत्वपूर्ण और अनुपम विशेषता थी कि सदियों से औपचारिक रूप से बर्तनदारी अधिकार प्रति परिवार सही-2 दर्ज किए जाते थे, जिसमें कौन किस वन में बर्तनदारी के लिए जा सकता है यह भी दर्ज था । वर्ष 1890 में इन्हें परिवार के कानूनी अधिकार के रूप में मान्यता मिली पर सन् 1920 तक परम्परागत वानिकी संरक्षण की दृष्टि से इन अधिकारों को बोझ समझा जाने लगा । राज्य की नीति में घोषणा की गई कि "जिन वनों पर ये अधिकार स्वीकार्य हैं, उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाए"[2] तो इन अधिकारों का प्रयोग नहीं किया जा सकता । सीमान्त किसानों, मुजारों फसल के पत्तीदारों के अधिकारों को परिसीमित करते हुए लोगों के अधिकारों की ऐसी पुर्नसरंचना के लिए ऊंची जाति के लोगों के बढ़ते प्रभाव को इस्तेमाल किया गया । ये वही लोग थे जो राज्य के प्रबल व्यापारिक हितों में सहभागी बनकर वनों के व्यापारिक दोहन के पक्ष में अधिकारों की पुर्नव्याख्या करना चाहते थे ।

ब्रिटिश काल में जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई; वर्ष 1901 तक कांगड़ा में जनसंख्या घनत्व 322 व्यक्ति प्रति किलोमीटर काश्त-क्षेत्र तक पहुंच गया । इसके साथ-साथ पशुधन कृषि और आवासीय आवश्यकताओं में हुई वृद्धि का गांव के वनों अथवा अवर्गीकृत वनों पर भारी जैविक दबाव पड़ा । यहां तक कि सीमाङ्कित, संरक्षित वन भी अपर्याप्त सिद्ध हुए । स्थानीय चरान-प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत पशुधन विभिन्न मौसमों में भिन्न भिन्न क्षेत्रों में चराए जाते थे । भूमि सम्बन्धी नीतियों के सिकुड़ते चरागाह क्षेत्र के कारण उस व्यवस्था पर काफी भार बढ़ा । सीमित सामुदायिक भूमि पर निर्वाह हेतू किए दोहन का स्तर उचित सीमा से बढ़ गया और भूमि विकृत होने लगी । इससे सीमाङ्कित व असीमाङ्कित संरक्षित वनों पर जैविक दबाव बढ़ गया ।

इस वन विनाश को रोकने के लिए वन विभाग द्वारा निम्नलिखित नियन्त्रक कार्य नीति अपनाई गई ।

आरक्षण अर्थात मौजूदा खड़े वनों के संरक्षण के लिए वनों पर लोगों के अधिकारों को कम करना या उनकी काट-छांट करना ।

वन विभाग ने अवर्गीकृत वनों व शामलात को अपने अधिकार में ले कर उन्हें आरक्षित वनों की तरह उपयोग हेतू बन्द करने का प्रयास किया । जबकि वह पहले ही अपर्याप्त थे और इससे-कृषक-जातियों में विरोध जगा ।

टैक्स लगाकर रेबड़ छोटे करना अत्याधिक चराई को सीमित करने के लिए कृषि की आवश्यकताओं से भेड़ों के बजाए बकरियों के रेबड़ों पर भावपूर्ण टैक्स लगाए गए । स्थानान्तरण करने वाले पशुओं पर चराई शुल्क और स्थानीय पशुओं पर पशु-शुल्क लगाया गया । इस तरह, कृषि के हित में - काश्त या चरान के लिए विभिन्न प्रकार की भूमि के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने के प्रयास किए गए ।

बारी बारी से बन्द करने का विधान अर्थात गांव समुदायों द्वारा चरागाहों और बन्जरों को बारी बारी से उपयोग के लिए बन्द करने का प्रयास । इस प्रकार के प्रयास तीव्र गति से वनों की बिगड़ती स्थिति को संवारने में सफल न हुए और इसी कारण बहुत से गांव समुदाओं ने इसका विरोध किया ।

वन संसाधनों की स्थिति

ब्रिटिश नीतियों ने लोगों की मुख्य वनों तक पहुंच पर प्रतिबन्ध लगा दिया और वनों पर उनकी निर्भरता को कम कर दिया । ऐसा करने के लिए सरकार ने वनों को चील, खैर और देवदार के एक ही किस्म के व्यापारिक वनों में परिवर्तित कर दिया क्योंकि इन वनों से लोगों की तत्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती थी । इन नीतियों द्वारा-खुले छोड़े गए कुछ झाड़ियों के वनों पर जैविक दबाव बढ़ गया । निजी कृषि भूमि के साथ यह वन चारा और ईंधन का मुख्य स्त्रोत बन गए ।

इसी के साथ सरकार ने घुमन्तु पशुपालन पर रोक लगा दी, जबकि यह पहाड़ी क्षेत्रों का मुख्य व्यवसाय था । और ऐसा करने के लिए पशुचारकों को व्यवस्थित कृषि करने के लिए बाध्य किया गया । बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक कोई अधिक भूमि कृषि के लिए साफ नहीं की जा सकी । निरन्तर

बढ़ रहे भू-विखण्डन के कारण कृषि भूमि कृषि कार्य में आए नये परिवारों की चारा व ईंधन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं रही । चारा पूर्ति का दबाव भी पहले से ही दबाव-ग्रस्त झाड़ी वाले जंगलों पर बढ़ा - विशेषकर उन वनों पर जो कांगड़ा के वर्षा पर आधारित-मात्र जीविका उपलब्ध करा पाने की क्षमता वाले-कच्चे-शिवालिक पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित थे । यह वन जो लम्बे समय से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते आ रहे थे, उन्हें अचानक दोहन प्रक्रियाओं में तीव्र बढ़ोत्तरी को झेलना पड़ा । ढलानों पर कटान से नग्न कर दिए गए क्षेत्रों को भारी वर्षा का सामना करना पड़ा और अभूतपूर्व भूक्षरण आरम्भ हो गया ।

वन विभाग असीमाङ्किक वनों में वनों के अभाव और भूक्षरण के लिए-अवैध कटान और अनियन्त्रित चरान को दोषी ठहराने लगा, विभाग यह भूल गया कि यह सरकार की अधिक राजस्व एकत्रित करने वाली नीतियों का परिणाम था । जंगलों को खाली करके उन्हें व्यापारिक जंगलों में परिवर्तित करने का यह परिणाम हुआ कि लोगों को अपनी जरूरत के लिए चारा व ईंधन की निकासी के लिए बचे-खुचे वनों पर आश्रित होना पड़ा और इससे तीव्र गति से वनों की दुर्गति हुई । भागीदारी-रहित वन प्रबन्ध से ही उड़ाऊ और अवैध निकासी को प्रोत्साहन मिला । वन विभाग के कुछ संरक्षण-मानसिकता वाले वन वैज्ञानिकों ने इस संरक्षण पद्धति द्वारा हुई पर्यावरण-क्षति का उदाहरण देते हुए भीतर से ही वैकल्पिक वन प्रबन्ध पर जोर देते हुए वन विभाग को सहभागी वन प्रबन्ध की ओर बदलाव के लिए प्रोत्साहित किया ।

वन विभाग भी ऐसा करने के लिए दबाव अनुभव करने लगा क्योंकि वनों से काफी कम लाभ होने लगा था । इससे यह निर्णय लेने में सहायता मिली, कि वन प्रबन्ध योजना में कुछ बदलाव लाने का प्रयोग किया जाए जिसके अन्तर्गत वनों का उपयोग करने वालों को वनों के संरक्षण सम्बन्धी अधिक जिम्मेवारी सौपी गई और वनों से होने वाले लाभ का भाग उन्हें देने का प्रावधान रखा गया । पहाड़ी क्षेत्रों की विशेष समस्याऐं जैसे-कठिन-पहुंच नाजुकता, सीमान्तता और विविधता (जोधा 1990) भी केन्द्रीकृत और व्यापारिक वन प्रबन्ध को आर्थिक और पर्यावरण की दृष्टि से अनुपयुक्त टहराने का कारण

बनी । साथ ही इन समस्याओं के कारण वैकल्पिक वन प्रबन्धन को प्रोत्साहन भी मिला ।

2

कांगड़ा-वन सहकारिता प्रयोग

अवधारणा

बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक वन विभाग ने यह जान लिया था कि वह तीव्र गति से हो रहे वन-विनाश की क्षति को साथ-साथ पूरा नहीं कर सकता । वर्ष 1935 में मद्रास में हुए वन-अधिवेशन में गहन परिचर्चा के उपरान्त वन विभाग के मुख्य अरण्यपाल श्री एच.एम. ग्लोवर ने निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुतत किया ।

"सम्मेलन में पक्के तौर पर यह राय उभरी कि असीमाङ्कित वनों की दयनीय स्थिति को देखते हुए वन प्रबन्ध की हाल की नीतियों को बदल देना चाहिए । ग्रामीण-वन बनाने की क्रियात्मकता की जांच करनी चाहिए और सरकार को एक कमेटी गठित करनी चाहिए जो यह निर्णय ले सके कि बाह्य हिमालय के प्रत्येक जिला में कौन-कौन से विशेष पग उठाने चाहिए ।"

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ और वर्ष 1937 में पंजाब सरकार ने सर कॉलिन गारवेट के नेतृत्व में एक जांच कमिशन का गठन किया और उस स्थिति की जांच करके कांगड़ा जिला के लिए सिफारिशें करने का काम सौंपा । उक्त कमेटी के लिए विचारणीय विषय थे यह पता लगाना कि :-

- वनों में या पास रहने वाले लोगों को लागू वन प्रशासन पद्धति के कारण क्या-क्या कठिनाइयां झेलनी पड़ी ।
- वह कौन सा सर्वोतम ढंग है जिससे उन लोगों को वन संरक्षण के लिए प्रोत्साहित किया जाए ।
- उनका वन विभाग से सहयोग कैसे प्रोत्साहित और सुनिश्चित किया जा सके ।

इस आयोग ने सारे कांगड़ा जिला का दौरा किया और यह अवलोकन किया कि वर्तमान कुल्लू, लाहौल व स्पिति जिलों के क्षेत्रों को छोड़ कर मात्र 20 प्रतिशत अर्थात 1,63,000 एकड़ वन, वैज्ञानिक-प्रबन्धन के अन्तर्गत थे और शेष 80 प्रतिशत अर्थात 6,48,000 एकड़, वनों पर उपभोक्ताओं के अधिकारों का भारी दबाव था और यह तीव्र गति से दुर्गति को प्राप्त हो रहे थे ।

आयोग की सिफारिशें निम्नलिखित थी[3] :-

- लोग ऐसे वन प्रबन्ध के लिए सहमत हों जो सरकार द्वारा पारित सादी कार्य योजना पर आधारित हो और जिसमें जहां प्रकट तौर पर आवश्यक हो रकबा बन्द करने की भी व्यवस्था हो ।
- इसलिए सरकार को लोग प्रतिनिधियों को इस कार्य से जोड़ना चाहिए ताकि नमूना प्रदर्शन स्वीकार्य हों ।
- लोगों को यह सिखाने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए कि संरक्षित वनों एवं शामलातों से होने वाला लाभ उन्हीं के हित में होगा ।
- लोगों को विशेष प्रतिनिधित्व देने के लिए - पंचायतों (ग्राम स्तर की चुनी हुई संस्था) का गठन करना चाहिए और वह गांव जिस क्षेत्र में हो उसके वन प्रबन्ध के बारे में उन्हें विस्तार से बताना चाहिए ।
- इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक गांव के लिए वन-प्रबन्ध की योजना बनानी चाहिए । उस कार्य योजना में न केवल शामलातों का अपितु उन संरक्षित व आरक्षित वनों के प्रबन्ध को भी ध्यान में रखना चाहिए जिन में गांववालों के अधिकार हों । और यह योजना ऐसी बननी चाहिए जिससे-लोगों के हित में वन उत्पादों की अधिकतम फसल हो ।
- यदि सम्भव हो तो वन प्रबन्ध पर होने वाले खर्चे वन उत्पादों की बिक्री से प्राप्त धन से कर लिए जाएं । जलागम क्षेत्र के संरक्षण का मूल्य संरक्षण कर्मचारियों के वेतन खर्च से, प्रदेश के लिए कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण था, जिसका आंशिक या पूरा भुगतान सरकार द्वारा किया जाना था ।

"अत: आयोग पंचायतों के गठन के लिए एक पंचायत अधिकारी और वन-प्रबन्ध योजना तैयार करने के लिए एक वन अधिकारी नियुक्त करने की सिफारिश करता है ।अगले चरण में पंचायत का सहयोग सलाहकार की हैसियत में-गांव की वन-सम्पदा के प्रबन्धन एवं कार्ययोजना के क्रियान्वयन में लिया जाएगा । कार्य योजना के तकनीकी सुझावों का क्रियान्वयन वन विभाग द्वारा किया जाएगा और इस कार्य में लगे कर्मचारियों के अनुशासन के लिए वन-मण्डल अधिकारी उत्तरदायी होगा । पर वन मण्डल अधिकारी व पंचायतों के बीच निकट सम्बन्ध रहेगा । पंचायतें और वन मण्डल अधिकारी कुछ अन्तरालों पर ऐसे मामलों पर चर्चा हेतू बैठकों का आयोजन करेगें जिनमें सुधार लाने की आवश्यकता दिखती हो ।"

"इसके अन्तिम उद्देश्य भले ही दूरस्थ हो, यह है कि गांव की समस्त वन सम्पदा का प्रबन्ध पंचायत द्वारा अनुमोदित रूपरेखा के अनुसार अपने ही वन कर्मचारियों द्वारा एक योग्य वन अधिकारी की देखरेख में किया जाएगा । यह वन अधिकारी जिलाधीश के अधीनस्थ कार्य करेगा । इससे कर्मचारियों पर होने वाला व्यय कम होगा और गांव का लाभ भी बढ़ेगा ।"

(इन शब्दों पर जोर-लेखक की ओर से)

यह सिफारिशें-समकालिक विचारधारा से मुख्य बदलाव का प्रतिनिधित्व करती थी । इनमें यह स्वीकार किया गया था कि सर्वोच्च प्राथमिकता मिट्टी और वन संरक्षण को दी जानी थी और यह सब सम्बन्धित समुदायों की भागीदारी के बिना सम्भव नहीं था ।

गैरबेट आयोग की सिफारिशों के अनन्तर पंजाब सरकार ने अपनी रणनीति तैयार की और वर्ष 1938 में अधिसूचना[4] भी जारी कर दी । जिसमें यह आदेश जारी किया कि वन विभाग को स्थिति का जायजा लेने, योजना तैयार करने और सिफारिशों के अनुसार उसे क्रियान्वित करने के लिए अधिकृत किया जाता है ।

"प्रस्ताव के आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाता है । आगामी कार्यवाही करने से पहले वन विभाग इन सिद्धान्तों के अनुरूप विस्तृत योजना बनाए कि भूक्षरण रोका जाएगा और प्रदेश के हितों की रक्षा की जाएगी ।"

ऐसे लगता है कि 1935 के सम्मेलन में जो चिन्ताएं व्यक्त की गई और इसके आधार पर पारित प्रस्ताव ने वन विभाग को नए-नए प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया । न केवल हिमाचल प्रदेश में, अपितु मध्य प्रदेश के दूरस्थ बस्तर क्षेत्र में भी ऐसी वन-सहकारी सभाएं स्थापित की गई ।

कांगड़ा वन-सहकारी सभा योजना का पर्यावलोकन

उपरोक्त आदेश के अनुसार वन विभाग ने सिफारिशों पर कार्य शुरू कर दिया । कांगड़ा में पूर्वी क्षेत्र के अरण्यपाल ने कांगड़ा वन सहकारी सभा योजना 18 जुलाई 1938 में आरम्भ कर दी और इसे क्रियान्वित करने के लिए एक पूरा वन मण्डल कांगड़ा ग्रामीण वन मण्डल (मुख्यालय धर्मशाला) के नाम से स्थापित किया गया । उलझाव-पूर्ण बन्दोवस्त और अधिकारों की अधिकता के कारण वन प्रबन्ध की उपयुक्त योजनाएं आरम्भ करना कठिन हो गया । फरवरी 1940 में पंजाब सरकार ने औपचारिक रूप से कांगड़ा वन सहकारी सभा योजना[5] को जिसे वन विभाग ने प्रस्तावित किया था स्वीकृति दे दी । सहायक अनुदान का मामला 1941 में अधिसूचित किया गया[6] । वन सहकारी सभाओं के नियमों और उपनियमों का प्रारूप तैयार करना अति कठिन था । वन विभाग, पंजीकार (सहकारी सभाएं) व कानूनी-अनुस्मारक के बीच बहुत लम्बे पत्राचार के बाद सितम्बर 1941[7] में अन्नत: नियम जारी किए गए ।

वन विभाग ने कांगड़ा वन सहकारी सभा योजना बड़े उत्साह के साथ-सहकारिता विभाग के सहयोग के साथ आरम्भ की । बारह वर्ष के लम्बे काल में कांगड़ा जिला के 2,793 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में 72 वन सहकारी सभाएं बनाई गई । सबसे बड़ा 5,094 हैक्टयर का क्षेत्र खन्यारा वन सहकारी सभा के अन्तर्गत था यह गांव धौलाधार की ढलान पर स्थित है और कांगड़ा वन मण्डल की धर्मशाला रेंज में आता है -

इस वन सहकारी सभा के अधीन 4600 हैक्टयर सीमाङ्कित संरक्षित वन और 440 हैक्टयर असीमाङ्कित संरक्षित वन आता था/है जिसका बहुत सा भाग पर्वतीय चरागाह है ।

इस वन सहकारी सभा के अन्तर्गत भूमि के कुछ भागों में स्लेट खदान का काम दशकों से बड़े जोर-शोर से होता रहा है ।

सबसे छोटे क्षेत्र वाली वन सहकारी सभा

जिसके अन्तर्गत मात्र 6 हैक्टयर शामलात भूमि आती थी/है - पालमपुर रेंज के घड़ोरल गांव में थी/है जो अब पालमपुर वन मण्डल में आता है ।

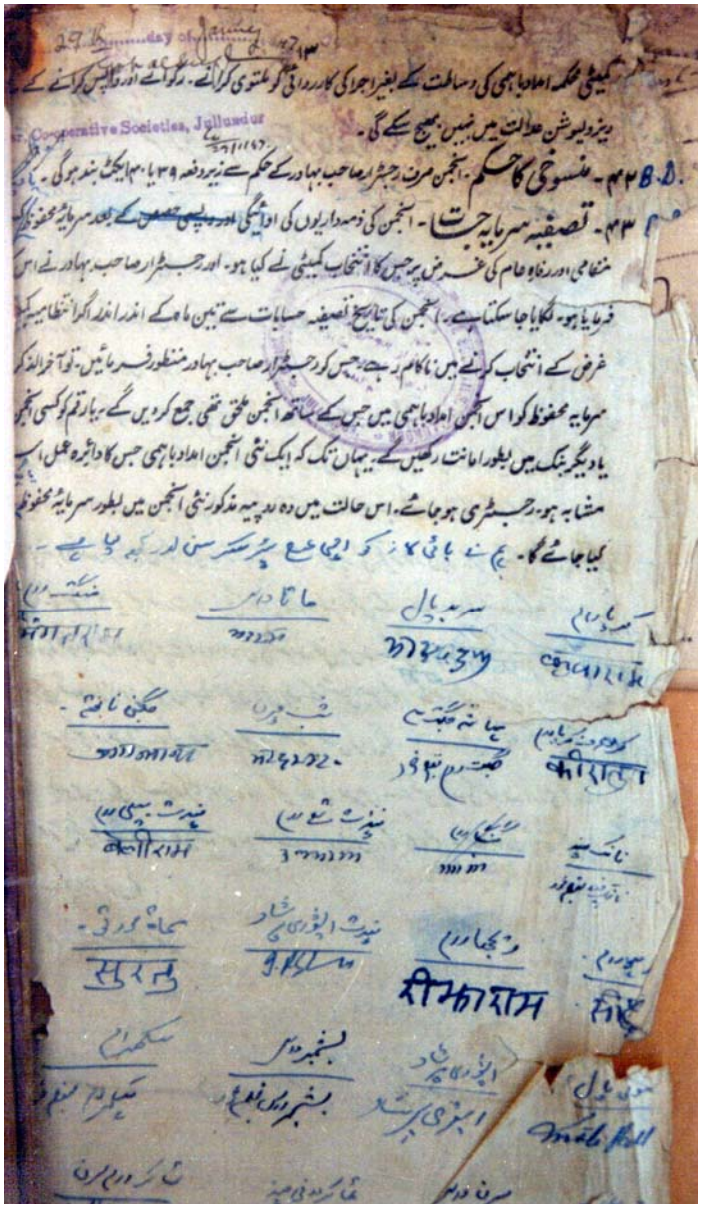

कांगरा वन सहकारी सभा मरंडा भंगियार के सदस्यों द्वारा ह 29
जनवरी 1947

के.एफ.सी.एस. मरण्डा भंगियार का नक्शा

नीति, प्रक्रियाएं और इतिहास

सरकार ने वन सहकारी सभा योजना को वार्षिक 50,000 रूपये सहायक अनुदान के प्रावधान के साथ वर्ष 1940 में पांच वर्ष के लिए स्वीकृत किया और 32 के.एफ.सी.एस. के गठन का लक्ष्य रखा । पहली के.एफ.सी.एस. के रूप में 16 नवम्बर 1941 को बहनाला सोसाईटी का पंजीकरण हुआ । सम्बन्धित भूमि का सोसाइटी को स्थानान्रण करने के बारे में अधिसूचना 26 अक्तूबर 1941 को जारी कर दी गई । वर्ष 1944-45, अर्थात स्वीकृत अवधि के अन्तिम वर्ष तक 40 के.एफ.सी.एस. 17,500 हैक्टयर क्षेत्र सम्मिलित करके गठित कर ली गई और उनके लिए अनुमोदित कार्य योजनाएं भी बना ली गई ।

निम्नलिखत शर्तो के साथ इस परियोजना अवधि को पुनर्वलोकन के उपरान्त 1 अप्रैल 1945 से आगे 5 वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया ।

1. सोसाइटियों को दी जाने वाली कुल वार्षिक सहायक अनुदान की राशि को 50,000 रूपये पर सीमित कर दिया और यह कि एक वर्ष की बचत को अगले वर्ष के लेखों मे नहीं लिया जा सकता ।

2. जब तक सहायक अनुदान राशि को 50,000 रूपये वार्षिक से बढ़ाया नहीं जाता गठन की जाने वाली सोसाइटियों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाएगा । इस तरह - के.एफ.सी.एस. की गठन संख्या का लक्ष्य

समाप्त कर दिया गया । लोगों के रूझान के आधार पर गठित की जाने वाली के.एफ.सी.एस. की संख्या निर्धारित करने के लिए वन विभाग को जो इस कार्य योजना के साथ नत्थी था को खुला हाथ दिया गया ।

3. जब सहायक अनुदान की राशि 50,000 रूपये की सीमां तक पहुंच जाए तब या तो इस राशि को बढ़ाने का औचित्य बताया जाए या उन सभाओं को जो बचत कर रही थी, सरकार के वित्तीय दायित्व को कुछ प्रतिशत तक उठाने के लिए प्रेरित किया जाए । इन वनों से सम्बन्धित असीमित देयताओं का भार उठाने के लिए सरकार तत्पर नहीं थी । इस तरह भुगतान न करने वाली सभाओं को वित्तीय स्वतन्त्रता देकर भुगतान करने योग्य बनाने के लिए उत्प्रेरित किया गया ।

4. उन सोसाइटियों को जिन्होंने गठन के पांच वर्ष के भीतर लाभ कमाना आरम्भ कर दिया, वन विभाग को निरीक्षण कर्मचारी वर्ग पर होने वाले खर्चो का वहन करने के लिए अर्जित लाभ का 10 प्रतिशत देना पड़ेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि अब के.एफ.सी.एस. को वन विभाग से प्राप्त तकनीकी सेवाओं के लिए फीस देनी पड़ती थी ।

के.एफ.सी.एस. भगोटिया का कार्यालन भवन जिसके एक भाग में डाकघर है और दूसरे भाग में आयुर्वैदिक डिस्पैन्सरी भवन

वर्ष 1950 यानि बढ़ाई हुई अवधि के अन्त तक 21,600 हैक्टर भूमि को सम्मिलित करके 63 के.एफ.सी.एस. का गठन किया गया साथ ही कार्ययोजना क्रियान्वयन का काम भी चालू किया गया । इस योजना का पुर्नवलोकन किया गया और इसकी अवधि आगामी तीन वर्ष के लिए अर्थात 1953 तक बढ़ा दी गई । इस बढ़ाई गई अवधि के अन्त तक 71 के.एफ.सी.एस. का गठन हो गया जिसमें 23100 हैक्टर भूमि सम्मिलित हुई और कार्ययोजना भी चालू कर दी गई । एक-एक वर्ष की दो अवधि बढ़ोतरियां की गई और इस काल में के. एफ.सी.एस की संख्या 72 हो गई । परन्तु निरन्तर दुष्प्रबन्ध के कारण के.एफ. सी.एस. खोहाला के बन्द कर देने के कारण इनकी संख्या 71 रह गई और अब इनके अन्तर्गत आने वाली भूमि 23500 हैक्टर थी

इस समय तक के.एफ.सी.एस. को कार्य करते 15 वर्ष हो चुके थे और इनके कार्य को अनुकरणीय माना गया । मार्च 31, 1956 तक की एक वर्षीय बढ़ोतरी के दौरान सहायक अनुदान की राशि बढ़ा कर 90,000 रूपये कर दी गई । इस राशि बढ़ोतरी की शर्ते यह थी कि अतिरिक्त राशि हमीरपुर और नूरपुर तहसीलों में के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए खर्च की जाएगी ।

परन्तु वर्ष 1956 में राजनैतिक इच्छाशक्ति जिसका समर्थन इस योजना को प्राप्त था-हटा ली गई । सब प्रारम्भिक प्रक्रियाओं, जिनमें सदस्यों के सहमति पत्र शामिल थे; को पूर्ण कर लेने पर भी-दो के.एफ.सी.एस. जिनका गठन हमीरपुर में किया गया-को अधिसूचित नहीं किया गया और वे कभी औपचारिक अस्तित्व में नहीं आई । के.एफ.सी.एस. की संख्या 71 पर टिक गई और स्वीकृत सहायक अनुदान की राशि भी 50,000 रूपये ही रही ।

मौजूदा के.एफ.सी.एस. के लिए योजना का परिचालन एक-एक वर्ष करके आगामी पांच वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया और यह अवधि मार्च 1961 तक समाप्त होनी थी । दुगा बख्शियां-राजपलवान हौड़ी के.एफ.सी.एस. की अधिसूचना सदस्यों में होने वाले निरन्तर झगड़ों के कारण-रद्द कर दी गई और अब के. एफ.सी.एस की संख्या घट कर 70 रह गई, जिसमें 44 कांगड़ा वन मण्डल और 26 नूरपुर वन मण्डल में थीं । (रावल 1968) यह के.एफ.सी.एस. अब

23600 हैक्टयर वन-भूमि का प्रबन्ध कर रही थी; जो कांगड़ा जिला की कूल वन-भूमि का 10 प्रतिशत बनता था ।

योजना अवधि की 10 वर्ष की अन्तिम बढ़ोतरी यानि (1961 से 1971) के दौरान सरकार ने 50,000 रूपये का वार्षिक सहायक अनुदान बन्द कर दिया और के.एफ.सी.एस. द्वारा आर्जित आय को उन्हें वापिस लौटाने का निर्णय लिया । नई के.एफ.सी.एस. के गठन रोकने के लिए विशेष आदेश जारी किए गए । सरकार के राजस्व-व्यय में कटौती के कारण वन विभाग पर दबाव बढ़ा और 1950 से 1955 तक गठित की गई के.एफ.सी.एस. के लिए यह घातक प्रहार सिद्ध हुआ क्योंकि इन सभाओं के अन्तर्गत वन अभी संपोषण की स्थिति में थे । तथा कम आय होने के कारण अपने कर्मचारी वर्ग को वेतन देने की स्थिति में नहीं थे ।

वर्ष 1971 में कांगड़ा नव गठित प्रदेश हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित हुआ । हिमाचल प्रदेश के वन विभाग ने इन के.एफ.सी.एस. के कानूनों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया - कि वे अपने वनों का स्वयं प्रबन्ध करते हैं । और यह आग्रह किया कि क्षेत्रीय कार्य-योजना के अनुसार वे अपने कर्मचारियों से ही प्रबन्ध कार्य चलाए । इसके बाद का घटना क्रम यह था कि इस योजना की कानूनी स्थिति के बारे में भ्रान्ति पैदा हुई और विभिन्न विभागों ने अपना समर्थन इस तरह, एक सांझे वन प्रबन्ध की एक पहल से, वापिस ले लिया । इस सब के बावजूद बहुत सी सभाएं कार्य कर रही हैं, और मान्यता प्राप्त करने का प्रयास कर रही हैं ।

के.एफ.सी.एस. के विकास के महत्वपूर्ण मील पत्थर संक्षेप में नीचे दिए गए है - प्रत्येक के.एफ.सी.एस. के गठन की तिथि और उसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र का ब्यौरा तालिका 1 में दिया गया है ।

तालिका 1 : के.एफ.सी.एस. के विकास महत्वपूर्ण मील-पत्थर		
वर्ष	घटनाएं	महत्व
1935	राष्ट्रीय-वन-सम्मेलन में कांगड़ा के क्षेत्रों के लिए वैकल्पिक कार्य-कौशल खोजने के लिए प्रस्ताव पारित हुआ	के.एफ.सी.एस. की अवधारणा समुदाय व विभिन्न विभागों को समीप लाई योजना की जड़े मजबूत हुई
1937	पंजाब सरकार द्वारा गारबेट आयोग योजना-कार्य-कौशल पर सुझाव देने के लिए गठन किया, सिफारिशें की व निष्कर्ष बताए गए ।	
1938	गारवेट कमिशन की सिफारिशों के अनुसार योजना तैयार करने के लिए वन विभाग को आदेश दिए ।	
जुलाई 1938	वन विभाग ने के.एफ.सी.एस. योजना लागू की	
फरवरी 1940	पंजाब सरकार ने योजना को स्वीकृति दी	
जनवरी 1941	पंजाब सरकार ने के.एफ.सी.एसा. को सहायक अनुदान देने के लिए शर्तें तय की और अधिसूचना की	
सितम्बर 1941	पंजाब सरकार ने के.एफ.सी.एस. के नियम अधिसूचित किए ।	
1940-45	के.एफ.सी.एस. योजना को पांच वर्ष के लिए स्वीकृति दी । 32 के लक्ष्य के सामने 40 सभाएं स्थापित हुई । सहायक अनुदान राशि 50,000 रूपये निश्चित हुई ।	
1945-50	योजना अवधि आगामी पांच वर्ष के लिए बढ़ाई गई और कुल 63 के.एफ.सी.एस. का गठन कर लिया गया ।	
1950-53	योजना अवधि तीन वर्ष और बढ़ाई गई और 23100 है. भूमि सम्मिलित करके 71 सभाएं गठित की गई ।	
1953-54	योजना अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ाई गई और 23800 है. भूमि सम्मिलित करके 72 के.एफ.सी.एस. गठित की गई ।	
1954-55	योजना अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ाई गई के.एफ.सी.एस. खोहाला बन्द की गई और अब उनकी संख्या 71 रह गई सम्मिलित क्षेत्र 23500 है. था । के.एफ.सी.एस. के प्रयोग पर शंकाए व्यक्त करने मुख्यमन्त्री का पत्र प्राप्त हुआ ।	
1955-56	योजना अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ाई गई सहायक अनुदान बढ़ा कर 90,000 रूपये कर दी गई ताकि नूरपुर और हमीरपुर तहसीलों में भी के.एफ.सी.एस. का गठन किया जाए किन्तु मुख्यमन्त्री के शंका-युक्त के कारण हमीरपुर की दो के.एफ.सी.एस. अधिसूचित नहीं की गई ।	समस्याएं उभरने लगी

तालिका 1 : के.एफ.सी.एस. के विकास महत्वपूर्ण मील-पत्थर		
1956-57	योजना अवधि 1 वर्ष के लिए बढ़ाई गई और के.एफ.सी.एस. की संख्या 71 पर टिक गई	आगे कैसे चला जाए इस बार सरकार अनिश्चिय से ग्रस्त के.एफ.सी.एस. हिमाचल को स्थानान्तरित हुई नए समीकरण और सम्बन्ध तलाशे गए
1957-58	योजना अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ाई गई और के.एफ.सी.एस. की संख्या 71 पर टिक गई ।	
1958-59	योजना अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ाई गई पर के.एफ.सी.एस. की संख्या 71 पर टिकी रही	
1959-60	ढुगा-वरिशयां-राजपलवान-हौडी की के.एफ.सी.एस. की अधिसूचना रद्द कर दी गई सम्भत: आंतरिक कलह के कारण-अब के.एफ.सी. एस. की संख्या 70 रह गई	
1960-61	योजना अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ाई पर के.एफ.सी.एस. की संख्या अब 70 रह गई ।	
1961-71	पंजाब सरकार ने योजना अवधि 10 वर्ष और बढ़ा दी । 50,000 रूपये का वार्षिक सहायक अनुदान भी बन्द कर दिया । और के. एफ.सी.एस. से हुई आय को आवश्यक सेवा-खर्चो को काट कर उन्हें लौटाने का निर्णय हुआ ।	
1966	पंजाब के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप कांगड़ा जिला हिमाचल प्रदेश का भाग बन गया ।	
1967	वनों का राष्ट्रीयकरण हुआ । वन उत्पादों यथा इमारती लकड़ी, बरोजा एवं अन्य के इक्टठा करने एवं बिक्री के प्रबन्ध के लिए एक निगम की स्थापना की गई । इस तरह के.एफ.सी.एस. दो मुख्य आय स्रोतों से वंचित हुई ।	
1968-1969	रावल की कार्य योजना 70 के.एफ.सी.एस. पर प्रभावी तौर पर लागू हुई ।	
1971	जनवरी 25 वर्ष 1971 को हिमाचल को पूर्ण राज्यत्व मिला । योजना अवधि को बढ़ोतरी नहीं मिली और यह अवधि समाप्त हो गई । वन विभाग ने तकनीकी समर्थन बन्द कर दिया- रावल की कार्य योजना के अनुसार के.एफ.सी.एस. का कार्य अपने हाथ में ले लिया । के.एफ.सी.एस. की आय सिमट कर तुच्छ रह गई-केवल सहकारी विभाग से सहायता मिलती रही ।	

1972-73	हिमाचल सरकार ने के.एफ.सी.एस. योजना को दो वर्ष के लिए बढ़ा दिया पर उपरोक्त स्थिति बनी रही । सहायक अनुदान के.एफ.सी. एस. को वर्ष 1980 में उपलब्ध हुआ ।	गैर मिलनसारी के कारण एक दूसरे के विरूद्ध कार्य करने से भ्रान्ति फैली किन्तु उपरी स्तर पर इससे उबरने के प्रयास चले रहे
1973	अरण्यपाल धर्मशाला ने सभी के.एफ.सी.एस. का पुनर्वलोकन किया और उनमें से 29 को दुर्दशा ग्रस्त पाया ।	
1974	हिमाचल सरकार ने वन उपयोग समिति को के.एफ.सी.एस. योजना की जांच करके सिफारिशें करने का काम सौंपा ।	
1977	वन उपयोग समिति समाप्त कर दी गई वह भी इससे पहले की वह उपरोक्त कार्य कर पाती ।	
1983	रावल कार्ययोजना का कार्य काल समाप्त हुआ । वन विभाग ने अब के.एफ.सी.एस. के अन्तर्गत आने वाले वनों को विभिन्न वन मण्डलों के लिए बनाई कार्य योजना में सम्मिलित कर लिया ।	
1989	अरण्यपाल धर्मशाला वृत्त ने के.एफ.सी.एस. के अन्तर्गत आने वाले वनों को अपने नियमित कार्य योजना में सम्मिलित कर अपने हाथ में लेने के निर्देश[8] जारी किए । वन मन्त्री व परिवहन मन्त्री ने इसका विरोध किया ।	
1990	के.एफ.सी.एस. के दबाव से बाध्य होकर के.एफ.सी.एस. को पुनः अच्छी हालत में लाने के लिए छानबीन के लिए एक और कमेटी अधिसूचित की	
1992	हिमाचल की विधान सभा राजनैतिक कारणों से भंग कर दी गई और उक्त कमेटी अपना कार्य पूरा न कर सकी ।	
1996	32 के.एफ.सी.एस. ने इक्टठा होकर जिला स्तर पर जिला वन सहकारी सभाएं बनाने और न्याय के लिए लड़ने का मन बनाया ।	
मार्च 2000	के.एफ.सी.एस. के सम्मुख चुनौतियों और समस्याओं पर राज्य स्तर की संवाद गोष्ठी हुई जिसकी अध्यक्षता सहकारिता मन्त्री ने की । के.एफ.सी.एस. को पुर्नजीवित करने पर वन, सहकारिता विभागों में सर्व-सम्मति बनी ।	

3

संस्थागत व्यवस्था

वन-सहकारी सभाओं के प्रबन्ध सिन्द्धात

के.एफ.सी.एस. के गठन एवं परिचालन के लिए आधार सिद्धान्तों व नियमों का वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है ।

उद्देश्य

जब यह परियोजना आरम्भ हुई तो के.एफ.सी.एस. के उद्देश्य निम्नलिखित थे ।

- कार्य-योजना में दर्शाए गए ढंग से सभा के वनों में वनारोपण, वनों में सुधार, उनकी रक्षा और प्रबन्ध करना, जिसमें विशेष उल्लेख - भूक्षरण, रोकने और वन-उत्पादन को सदस्यों के लाभ के लिए प्रयुक्त करने का था ।
- सहकारिता सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के ज्ञान का प्रसार करना -और-
- अन्य गतिविधियों को आरम्भ करना जो उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रासंगिक एवं प्रेरक हों ।

मौलिक शर्तें

एक सहकारी सभा का गठन तभी हो सकता है जबकि 75 प्रतिशत खेवटदार (भूमि मालिक जिनके वनों में अधिकार हों) एवं अधिग्रहण की जाने वाली राजस्व सम्पदा के मौजा व टीकों के काबिज़ कास्तकार इसके गठन के लिए सहमत हों । सहकारी सभाओं को पंजाब सहकारी सभा अधिनियम II (1912) और तदनन्तर पंजाब सहकारी सभा अधिनियम 1954 के अन्तर्गत पंजीकार (सहकारी सभाएं) के साथ पंजीकृत करवाया जाता था और अब

हिमाचल प्रदेश सहकारी सभा अधिनियम 1968 के नियमों के अन्तर्गत नियन्त्रित होती हैं ।

सदस्यता

कोई भी, सभा के कार्यक्षेत्र का निवासी जिसकी आयु 18 वर्ष हों और उसके के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रशासित वनों में अधिकार हों, एक रूपया फीस देकर के.एफ.सी.एस. की सामान्य सभा का सदस्य बन सकता था । उसे एक अनुबन्ध पत्र (परिशिष्ट II) भरना होता था, जिसके द्वारा अपने आपको सभा की कार्य योजना को कार्यान्वित करने के लिए प्रतिबद्ध करने के साथ-साथ वन पर अपने व्यक्तिगत अधिकारों को सभा के अधीन करना होता था । सदस्यता, किसी दूसरी जगह बस जाने पर, बेइमानी करने पर, वनों पर अधिकार न रहने पर, अपनी मर्जी से के.एफ.सी.एस. से नाता तोड़ लेने पर समाप्त की जा सकती थी ।

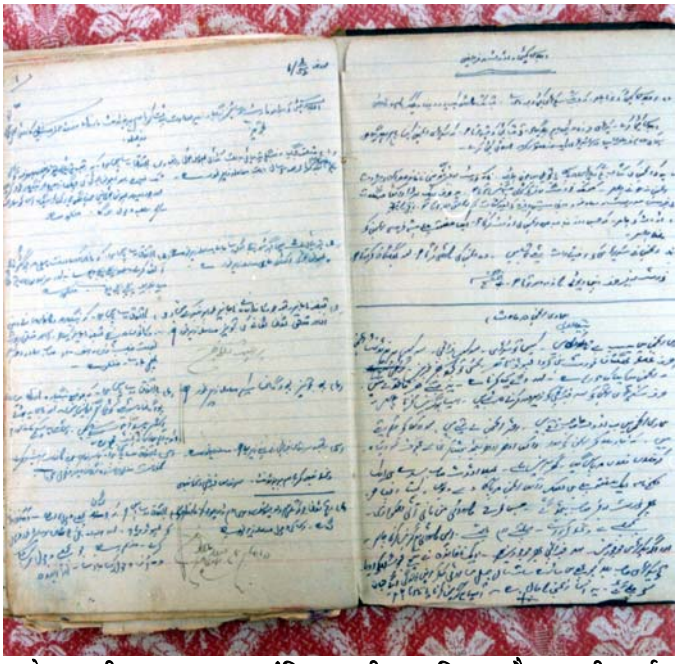

के.एफ.सी.एस. मरण्डा भंगियार की आरम्भिक बैठक की ऊर्दू में कार्यवाही

सामान्य सभा

सामान्य सभा की बैठक वर्ष में प्रबन्ध समिति के निर्देश पर सचिव द्वारा आमतौर पर एक बार बुलाई जाती थी । विशेष स्थिति में यथा आन्तरिक कलह कम से कम एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित मांग पत्र द्वारा प्रबन्ध समिति को सामान्य सभा की बैठक बुलाने का आग्रह किया जा सकता था । और इसके विफल होने पर बैठक बुलाने का मामला हस्ताक्षरी वर्ग पंजीकार (सहकारी सभाए) के साथ उठा सकता था । ऐसी स्थिति में पंजीकार बैठक बुला सकता था, सामान्य

सभा की बैठक के लिए कुल सदस्यों के एक तिहाई की उपस्थिति आवश्यक थी । ऐसे मामले, जिनका उपनियमों में विशेष हवाला न हो, वह सब बहुमत द्वारा निर्णीत होते थे । प्रतिनिधि मतदान की आज्ञा नहीं थी ।

प्रशासनिक मामलों में, लाभ वितरण करने, सदस्यों की भर्ती व निष्कासन करने, कार्य योजना अपनाने, उपनियमों में संशोधन करने और प्रबन्ध समिति द्वारा निर्धारित सदस्यों के अंशदान का अनुमोदन करने, का अन्तिम अधिकार सामान्य सभा का ही होता था । सामान्य सभा की बैठक में अधिकतम ऋण सीमा निश्चित की जा सकती थी अर्थात् वह सीमा जहां तक सहकारी सभा – सदस्यों व गैर सदस्यों से धरोहर राशि या ऋण ले सकती थी । (पंजीकार के निर्देशों के अनुसार)

प्रबन्ध समिति

प्रबन्ध समिति में सात से अधिक व्यक्ति नहीं होते थे, जिसमें प्रधान, उपप्रधान व कोषाध्यक्ष शामिल होते थे और वे सब अवैतनिक हैसियत में काम करते थे । सचिव प्रबन्ध समिति का कार्यकारी मुखिया होता था और उसे वर्ष के अन्त में एकमुश्त राशि आमतौर पर दी जाती थी । प्रबन्ध समिति का चुनाव वर्ष 1971 तक पंजाब सहकारी सभा अधिनियम 1912 के अधीन वर्ष में एक बार सामान्य सभा की विशेष बैठक में किया जाता था और बाद में हिमाचल प्रदेश सहकारी सभा अधिनियम 1968 के अधीन चुनाव दो वर्ष में एक बार होने लगा । इस बैठक में प्रत्येक सदस्य को बोलने, मतदान करने और ग्राम वनों के प्रबन्ध सम्बन्धी मामलों पर चर्चा करने का बराबर अधिकार होता था ।

वन सम्बन्धी अपराध करने वाले सदस्यों पर किए जाने वाले जुर्मानों की सीमा भी इसी बैठक में तय की जाती थी । प्रबन्ध समिति को राखा की नियुक्ति और सचिव, कोषाध्यक्ष और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति व उनके वेतन निर्धारण करने का अधिकार प्राप्त था । प्रशासनिक व वित्तीय पहलुओं पर निर्णय लेने के लिए भी प्रबन्ध समिति सक्षम थी । वन अधिकारी, लोगों द्वारा सामान्य सभा की बैठक में चयनित होता था और पंजीकार सहकारी विभाग द्वारा इसकी नियुक्ति की पुष्टि की जाती थी । के.एफ.सी.एस. के गठन, लेखा जांच

व आम जानकारियों सम्बन्धी सारे काम की जिम्मेवारी सहकारी विभाग की होती थी और वन विभाग तकनीकी मार्ग दर्शन व नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होता था ।

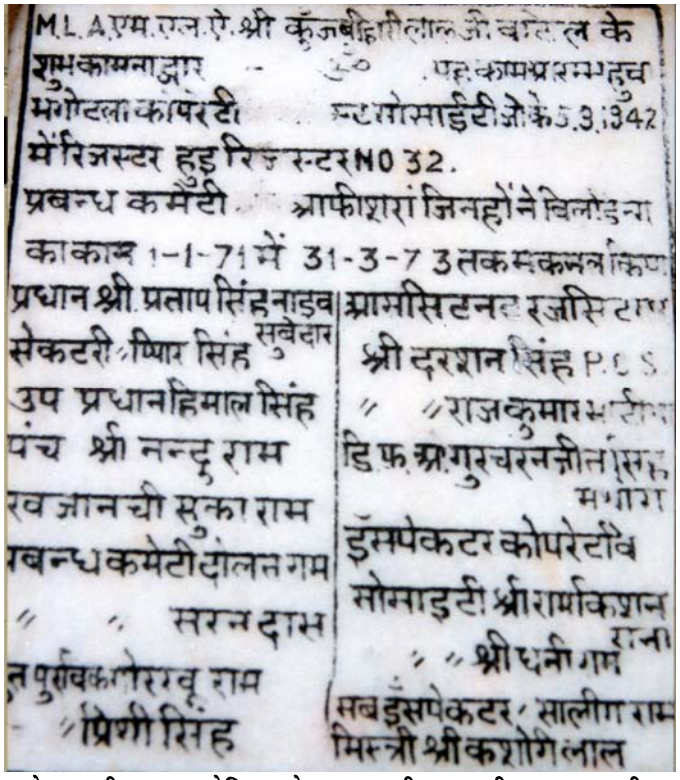

के.एफ.सी.एस. भगोटिया के भवन की एक दीवार पर लगी पत्थर की पट्टियों पर प्रबन्ध समिति वर्ष 1942 के पदाधिकारियों की सूची दर्ज है

उपनियमों में यह प्रावधान था कि के.एफ.सी.एस. के प्रशासनिक नियन्त्रण में आने वाले क्षेत्रों को सुधार के बाद व कृषि योग्य घोषित किए जाने के बाद भी मालिकों को न सौपा जाएं । जब तक कि के.एफ.सी.एस. अपने सामान्य सभा की बैठक में इन्हें मुक्त करने का विधिवत प्रस्ताव पारित न करें और सामान्य सभा द्वारा निर्धारित भूमि के सुधार किए जाने की लागत मालिकों से वसूल न की जाए ।

वित्तीय पहलू

कार्य योजना तैयार करने, ग्रामीण वन का सीमाङ्कन करने और सरकारी वन विभाग कर्मचारियों द्वारा निरीक्षण पर होने वाली लागत सरकार वहन करती थी । अपनी वित्तीय स्थिति के आधार पर सभाएं भुगतान करने वाली या न करने वाली हो सकती थी । भुगतान करने वाली सभाओं को वह भूमि प्राप्त होती थी जिसमें पहले से ही वन होते थे, और इस तरह उन्हें आरम्भ से ही आय होने लगती थी । इन सभाओं में काम और कर्मचारियों पर आने वाली लागत सभा निधि में से दी जाती थी । सभाओं को अपने लेखों की जांच

प्रतिवर्ष सहकारिता विभाग से करवानी होती थी । एक सभा की आय के विविध स्रोत हो सकते थे ।

विविध स्रोतों से शुद्ध आय यह नाम उस आय को दिया गया जो विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय में से सभी भुगतान करने के बाद बचे । इसमें निम्न प्रकार की आय तत्व शामिल थे ।

- वह आय जिस पर उन मौजों, जिनसे के.एफ.सी.एस. संघटित होती हो की स्वामित्व संस्था का एकमात्र व परिभाषित अधिकार हो । जैसे घास, फल, खानों व घराटों[9] से होने वाली आय । के.एफ.सी.एस. इस आय को संग्रहीत कर सकती थी परन्तु वाजिब-उल-अर्ज में दर्ज अधिकारों के अनुसार यह खेवटदारों में बांटनी पड़ती थी ।
- निजी मलकीयत की भूमि से होने वाली आय जिसका प्रबन्धन के.एफ.सी.एस. करती हो । वास्तविक खर्चों को काटकर के.एफ.सी.एस. को इसे मालिकों को देना पड़ता था ।
- सरकार से मिलने वाला सहायक अनुदान ।

पहली दो मद्दों का जोड़, बांटी जाने वाली शुद्ध आय होती थी, इस आय में से कुछ आबंटन अनिवार्य थे । इनमें शामिल थे 1 प्रतिशत आरक्षित निधि, 10 प्रतिशत वन सुधार निधि, 9 प्रतिशत परोपकारी उद्देश्यों के लिए (पुव्यार्थ निधि अधिनियम 1890 धारा-2 में परिभाषित) या के.एफ.सी.एस. के साधारण हितैषी निधि के लिए, 5 प्रतिशत तक सहकारी शिक्षा निधि के लिए (वास्तविक राशि और निर्देश कि राशि कहां खर्च करनी है पंजीकार द्वारा बताया जाता था) और कुछ अंश भवन निधि स्थापित करने के लिए या और किसी निधि के लिए जो के.एफ.सी.एस. द्वारा वांछित हो । उपरोक्त आबंटन सभा के लेखा-खातों में दर्ज करना पड़ता था ।

शुद्ध सरकारी अनुदान वह राशि होती थी जो प्रत्येक के.एफ.सी.एस. को कार्य योजना के अनुसार चालू खर्चों के भुगतान के लिए सरकार द्वारा दी जाती थी । इस निधि से सभा को जमींदारी हिस्सा (पेड़ों के कटान व बिक्री से प्राप्त राजस्व का एक चौथाई भाग यानि हक चौहारम) सदस्य खेवटदारों को देना

पड़ता था । आमतौर पर यह छोटी राशियां होती थीं और इन्हें खेवटदारों को नगद देने के बजाए उनकी तरफ से सरकार को दिए जाने वाले लगान के रूप में उनकी ओर से के.एफ.सी.एस. द्वारा अदा की जाती थीं । गांव का पटवारी और नम्बरदार (पारम्परिक राजस्व संग्रहकर्त्ता) को कुल राजस्व का 1/16वां भाग प्राप्त होता था । पहले बन्दोवस्त नियमों के अनुसार हकदार व्यक्तियों को दी जाने वाली राशियों को वन मण्डल अधिकारी को प्रमाणित करना पड़ता था । तब राजस्व विभाग चैक तैयार करके के.एफ.सी.एस. को भेज देता था । विभिन्न देयताओं का भुगतान करने के बाद बची राशि शुद्ध सरकारी अनुदान होती था और यहीं के.एफ.सी.एस. की वास्तविक आय होती थी ।

अन्तिम आय - अन्तिम आय उपरोक्त कटौतियां और के.एफ.सी.एस. के वर्ष भर के चालू खर्चों की कटौती के बाद बची राशि होती थी । यह आय सदस्यों को उनके वनों पर अधिकारों के अनुपात में बांट दी जाती ।

कार्य-योजनाएं

के.एफ.सी.एस. को पंजीकृत करने से पूर्व के.एफ.सी.एस. के सदस्यों से परामर्श करके वन-विभाग के एक राजपत्रित अधिकारी द्वारा कार्य-योजना बनाई जाती थी । इसके लिए औपचारिक सहमति सामान्य बैठक में ली जाती और इसे के.एफ.सी.एस. में दर्ज कर लिया जाता था । सभा तभी पंजीकृत की जा सकती थी जब सरकार की ओर से मुख्य अरण्यपाल से कार्य योजना की स्वीकृति मिल जाती । इसकी कार्य-अवधि समाप्त होने पर, वन विभाग द्वारा फिर के.एफ.सी.एस. के सदस्यों से परामर्श करके कार्य योजना को संशोधित किया जाता था । कार्य-योजना में वनों के प्रबन्धन के बारे में विस्तृत विवरण उपलब्ध होता था । यह विवरण-विशेषकर चारागाहों के भागों को बन्द करने, (घास की उपज लेने के लिए) भूसंरक्षण के लिए, बन्द क्षेत्रों अथवा चरान के लिए छोड़े गए क्षेत्रों में चारा देने वाले एवं आर्थिक मूल्य वाले पेड़ों के रोपण से सम्बन्धित होता था ।

के.एफ.सी.एस. योजना का परिचय व भूमिका

प्रारम्भ में तो लोग के.एफ.सी.एस. योजना के बारे में शंकालु थे - पर राजनेताओं के हस्तक्षेप से और जनता दरबारों व इस कार्य के लिए नियुक्त वन कर्मचारियों के माध्यम से योजना के बारे में जानकारी के "विस्तृत प्रसार द्वारा वन प्रबन्धन को लोकतान्त्रिक बनाने का प्रयोग"[10] लोगों तक पहुंचाना सम्भव हुआ ।

अरला-सलोह वर्तमान राखा बाएं खड़ा है का पहला राखा (दाएं) जिसकी आयु 70 वर्ष है

चयनित गांवों में इस योजना को पहुंचाने के लिए विशेष प्रयास करने वाले जिला के महत्वपूर्ण, प्रशासनिक, राजस्व विभाग, वन विभाग और सहकारिता विभाग के अधिकारियों के बारे में जिक्र मिलता है ।

उत्तरी-वृत के अरण्यपाल ने के.एफ.सी.एस. के गठन से सम्बन्धित विस्तृत प्रक्रियाओं को अधिसूचित किया[11] । कर्मचारी वर्ग की कमी के कारण इस योजना का कार्यक्षेत्र व्यास नदी के उत्तर में पड़ने वाले कांगड़ा के भागों तक ही सीमित रखा गया । यद्यपि मौलिक आर्थिक इकाई मौजा मानी गई थी, पर

विशेष प्रशासनिक समस्याओं के कारण एक या एक से अधिक टीकों को मिला कर भी व्यवहारिक इकाई बनाई जा सकती थी । इकाई चुनने में वन विभाग द्वारा उन गांवों को, प्राथमिकता दी जाती थी, जिनमें अप्रबन्धित व भूक्षरण एवं अन्धाधुन्ध कटान से ग्रस्त बड़े-बड़े व साथ-साथ जुड़े क्षेत्र हों । उन गांवों को भी के.एफ.सी.एस. की स्थापना के लिए बेहतर समझा जाता था जिनमें कोई सहकारी सभा पहले से ही कार्यरत हो । वन विभाग का यह मत था कि "टीकों और बरतनदारों की संख्या जितनी कम होगी - प्रबन्धन कार्य उतना ही आसान होगा ।" इस प्रयोग की क्षमता को सिद्ध करने के लिए सुगम पहुंच वाले गांव पहले चुने जाते थे ।

तालिक I में दिया गया घटना-अध्ययन के.एफ.सी.एस. के गठन की वास्तविकता को समझाने में सहायक है । भगोटला सहकारी सभा के गठन का इतिहास - के.एफ.सी.एस. की गठन प्रक्रिया के दौरान गांव में; जाति पर आधारित या अन्य सामाजिक अर्न्तप्रवाहों पर प्रकाश डालता है ।

के.एफ.सी.एस. भगोटला द्वारा अपने कोष से बनवाया प्राथमिक पाठशाला का भवन

तालिका I: भगोटला वन-सहकारी सभा का गठन

भगोटला गांव पालमपुर तहसील में न्यूगल खडड् के दाएं किनारे पर पालमपुर नगर से 6 किलोमीटर दूर स्थित है । भगोटला मौजा के अन्तर्गत 156.4 है. भूमि आती थी और इसमें उत्तरी सीमा के साथ-साथ फैला हुआ 68. 4 है. इक्टठा वन क्षेत्र भी शामिल था ।

वन-माफी जंगल, 1860 में विशेष 10 गांव समुदायों को, उनकी भूमि चाय बागानों के लिए अधिगृहीत करने के बदले रियायत के रूप में दिए गए वन क्षेत्र थे । ली गई भूमि के बदले जमींदारों को अवर्गीकृत वन का बराबर क्षेत्र दिया गया जिस पर उनका लगभग एक मात्र अधिकार था क्योंकि इस क्षेत्र को बन्द करने का अधिकार वन विभाग ने त्याग दिया था । केवल जिलाधीश ही इन वन माफी क्षेत्रों के उपयोग पर कुछ सीमा तक नियन्त्रण रख सकता था । वर्ष 1930 तक वन विभाग ने यह अनुभव किया कि जमींदार इन वनों के संरक्षण में सक्षम नहीं थे और यह कि इन वनों का स्तर गिर रहा था । चील के पेड़ों से बिरोजा निकालने का काम ठेकेदारों को सौंपने की प्रथा सबसे बड़ी समस्या थी । इसे रोकने के लिए जिलाधीश ने सन् 1942 में एक आदेश जारी किया जिसके द्वारा भगोटला के जमींदारों को बिरोजा निकालने का काम ठेकेदारों को सौंपने पर रोक लगा दी और उसके लिए आधार यह था कि उनके द्वारा यह काम अवैज्ञानिक ढंग से किया जा रहा था ।

तालिका 2: भगोटला वन भूमि का वर्गीकरण

किस्म	वर्ग	क्षेत्रफल है. में
वन-सरकार	अवर्गीकृत वन	38.4
शामलात टीका	वनमाफी	16.4
	निजी बन्जर भूमि	12.4
	गैर-मुमकिन	1.6
	कूल योग	68.4

भगोटला के.एफ.सी.एस. के गठन के समय वन-विभाग के मन में उपरोक्त प्रसंग पहले से था । उन्होंने भगोटला[12] को इसलिए चयनित किया क्योंकि यह सबसे छोटा वन-माफी गांव समूह था और दूसरे गांवों जिनमें के.एफ.सी.एस. का गठन अभी किया जाना था, वहां इसे एक नमूने के बतौर प्रयोग किया जाना सुगम था । ऐसा प्रतीत होता है कि वन माफियों के प्रबन्धन में दखलन्दाजी के लिए

जिलाधीश का सीमित अख्तयार और वन विभाग का शून्य अधिकार होना ही, वन-माफी गांवों को के.एफ.सी.एस. योजना के अन्तर्गत लाने के सरकार के निर्णय का कारण बना । इस निर्णय का आशय यह था कि वन माफियों पर के.एफ.सी.एस. के नियम लागू हों और वन विभाग की सक्रिय दखलन्दाज़ी सम्भव हो ।

सहकारिता विभाग के उप-निरीक्षक द्वारा आरम्भिक परिचायक बैठकें आयोजित की गई, जिसके परिणामस्वरूप 15 अक्तूबर 1941 को भगोटला के जमींदारों द्वारा एक प्रार्थना पत्र तैयार किया गया जिसमें उनके गांव में के.एफ.सी.एस. के गठन का आवेदन किया गया था । दूसरे चरण में कार्य-योजना अधिकारी ने भगोटला का दौरा किया और भगोटला के सभी वनों को के.एफ.सी.एस. के अन्तर्गत लाने के लिए कार्ययोजना तैयार की जिसमें वनों को उपयोग के लिए बन्द करने के सुझाव व निर्देश निहित थे । गांव के निवासियों ने वनों को बन्द करने का विरोध किया क्योंकि इसमें कम से कम आधे चरान के लिए खुले थे । पर वन विभाग बन्द करने के लिए बजिद् था । उनको विश्वास था कि यह प्रावधान वनों के अच्छे प्रबन्ध के लिए महत्वपूर्ण है । नम्बरदार व उसके भाई को छोड़ कर भगोटला के खेवटदार निवासी के.एफ.सी.एस. के औपचारिक सदस्य बनने के लिए अपने वनों पर अधिकार को छोड़ने के लिए पूर्वकार्यवाही के रूप में अनुबन्ध पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए मुकर गए । अत: सहकारिता विभाग ने के.एफ.सी.एस. को विघटित कर दिया ।

गांव में, उस समय के नम्बरदार की भूमिका को समझना आवश्यक है । नम्बरदार पहले और अब भी राजस्व संग्रह के लिए गांव में परम्परागत कानूनी संस्था हैं ।

एक निश्चित भागांश के बदले वह सरकार की ओर से राजस्व संग्रह का काम करता है । नम्बरदार बनने का अवसर गांव के शक्तिशाली ऊंची जाति के लोगों के प्रभाव क्षेत्र में आता था । यह पद पैतृक था और बाप से बेटों को स्वत: प्राप्त हो जाता था । नम्बरदार का परिवार प्राय: गांव का शक्तिशाली परिवार होता था । राजस्व संग्रह का कार्य, दुर्लभ नगद पैसे और भूमि के लिखित अभिलेखों के ज्ञान तक उनकी पहुंच कायम करता था । जबकि आम

अनपढ़ किसान उन भूमि अभिलेखों की समझ नहीं रखता था, इसी कारण नम्बरदार बड़े बड़े भूखण्डों के मालिक बन गए । उनकी तहसीलदार व अन्य प्रशासनिक अधिकारियों के साथ समीपता ने उन्हें ऐसी शक्तिशाली स्थिति में ला कर खड़ा कर दिया था कि सरकारी योजनाओं को वे अपने हित में परिभाषित व उपयुक्त कर सकते थे । इस तरह भगोटला की आधी, काश्त योग्य व शामलात भूमि नम्बरदार की मलकीयत में थी । नम्बरदार का परिवार, गांव के लोगों की राय को प्रभावित करने के लिए सरकार का सशक्त माध्यम था ।

सहकारिता विभाग के उप-निरीक्षक ने बारीकी से 14 है. भूमि, जिसे के. एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित किया जाना था और जिसमें चरान बन्द करने का प्रस्ताव था, उससे सम्बन्धित अधिकारों के अभिलेखों की जांच की । उसने पाया कि नम्बरदार व उसके भाई के पास आधी शामलात भूमि के अधिकारों पर स्वामित्व था । अभी तक अनिवासी खेवटदारों की अनदेखी की गई थी । उनमें से 15 के हिस्से की भूमि और नम्बरदार व उसके भाई की भूमि को मिलाकर एक समूह गठित किया गया जिसका स्वामित्व 2/3 शामलात भूमि पर था । पंजाब के अरण्यपाल व निदेशक भूसंरक्षण विभाग दोनों ने भगोटला में विरोधियों को के.एफ.सी.एस. के अन्तर्गत लाने के लिए बैठक की । अरण्यपाल बन्द करने वाले क्षेत्रों के आकार को छोटा-बड़ा करने के लिए तैयार था पर निवासी खेवटदार इसके लिए तैयार न थे और हर कीमत पर बन्द रकबों को समाप्त करना चाहते थे । वन-अधिनियम की धारा 38 के अनुसार-नये समूह में 2/3 सदस्य होने से बहुमत था और वह तकनीकी तौर पर रकबे बन्द करने के लिए आवश्यक सहमति देने में सक्षम था । इस तरह रकबे बन्द करने के काम को निवासी खेवटदारों के बहुमत के बावजूद, अनिवासी खेवटदारों को रजामन्द करके कार्यान्वित कर लिया गया ।

भगोटला वन सहकारी सभा की अगली बैठक जिसमें 17 लोग हाज़िर थे और 11 खेवटदार अनुपस्थित रहे, गठित कर ली गई । नम्बरदार को के.एफ.सी. एस. का सचिव चुन लिया गया और इस पद पर वह 1950 तक बना रहा । 28 मार्च को निम्नलिखित भू-विभाजन के साथ, कार्य-योजना को अपना लिया गया ।

शैलटर-वुड चील वन वृत	=	40 हैक्टर जिसमें 10 हैक्टर बन्द
घास व चारा वृत	=	12.8 हैक्टर सारा हैक्टर बन्द
चारागाह वृत	=	16 हैक्टर सारा बन्द

इस कार्य-योजना की स्वीकृति के बाद 5 सितम्बर 1942 को यह सभा पंजीकृत कर दी गई और 2 अक्तूबर 1943 को प्रबन्ध करने के लिए भूमि भी के.एफ.सी.एस. को स्थानान्तरित कर दी गई । के.एफ.सी.एस. के गठन का अर्थ था कि अब जिलाधीश द्वारा बिरोजा निकासी के लिए जम्मीदारों पर लगाया गया प्रतिबन्ध बेअसर हो गया[13] । अब जमींदार के.एफ.सी.एस. के माध्यम से चील से बिरोजा निकालने का काम वन-मण्डल अधिकारी के पर्यवेक्षण में कर सकते थे । 1942 में के.एफ.सी.एस. ने वन ठेकेदार द्वारा करवाई गई बिरोजा निकासी से 2000 रूपये की आय प्राप्त की । बेरोक टोक चराई बन्द करने के परिणामस्वरूप बन्द रकबों में घास उगनी आरम्भ हुई और उसकी नीलामी से भी सभा को आमदन प्राप्त होने लगी । के.एफ.सी.एस. के माध्यम से व्यक्तिगत आय होने की सम्भावना से भी लगता है कि निवासी खेवटदार के.एफ.सी.एस. के फायदों से कायल हुए । 3 नवम्बर 1942 को सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) धर्मशाला की अध्यक्षता में सभा की बैठक हुई जिसमें चार विरोधी गुटों के नेताओं ने भी के.एफ.सी.एस. की सदस्यता स्वीकार कर ली[14] ।

वर्ष 1943 तक सदस्यों की संख्या बढ़ कर 24 हो गई और इसके बाद लगातार बढ़कर वर्ष 1945 में 41 और 1971 में 103 हो गई । के.एफ.सी.एस. ने वार्षिक लगान, अपने सदस्यों की तरफ से, वन विभाग से प्राप्त होने वाले जमींदारी हिस्से में से देना जारी रखा । के.एफ.सी.एस. ने अपनी जन हितैषी निधि में से दो कुएं निर्माण व मुरम्मत, एक स्कूल भवन निर्माण, प्रति वर्ष न्युग्गल खडड् के पुल की मुरम्मत पर भी खर्च किए । 9603 रूपये व्यय करके सभा ने अपना भवन भी बनाया ।

के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित क्षेत्रों में वन पुर्नजीवन और वन रोपण की सफलता को वन-विभाग और प्रशासन के अधिकारियों जिन्होंने इन क्षेत्रों का दौरा किया, नें खूब सराहा जो लिखित रूप में उपलब्ध है ।

तथापि लोगों के सभा पर स्वामित्व, या इसके लोकतान्त्रिक संस्थाओं के ढंग से काम करने की कोई विशेष स्म्भावना नहीं दिखती थी । लम्बरदार के स्वेच्छाचारी प्रशासनिक व्यवहार, लेखाओं की सुस्पष्टता के अभाव और सदस्यों का लाभ-वितरण न किए जाने के बारे में कई शिकायतें की गई । सभा के सचिव होने के नाते उसने एक अनपढ़ व्यक्ति को कोषाध्यक्ष बना दिया और लेखाओं का प्रबन्ध और नियन्त्रण अपने हाथ में रखा ।

सहकारिता विभाग लम्बरदार को गांव का आदर्श व प्रतिबद्ध वाला नेता समझता था और उसे 72 रूपये का नगद इनाम भी देता था । पर उसका निरंकुश व्यवहार सदस्यों को स्वीकार नहीं था । उन्होंने इसकी शिकायत सहायक पंजीकार से की । अखिरकार 1948 में सहायक पंजीकार ने 1000 रूपये के गबन का उसे दोषी पाकर पुलिस थाने में मुकद्दमा दायर कर दिया । न्यायालय द्वारा उसे 500 रूपये जुर्माना किया गया और उसे न दे पाने की अवस्था में चार मास की कैद की सज़ा सुनाई । के.एफ.सी.एस. ने लम्बरदार को निकाल दिया और इस तरह सभा के प्रबन्ध के लिए नया नेतृत्व सामने आया । अब हर दो वर्ष में एक बार के.एफ.सी.एस. चुनाव करवाती है और लेखा जांच भी प्रति वर्ष करवाया जाता है । 1973 से सदस्य एकमत से वन विभाग द्वारा भ्रान्ति की अवस्था पैदा करने के लिए आलोचना करते आ रहे हैं । फिर भी वह के.एफ.सी.एस. के लक्ष्य और उद्देश्यों के लिए प्रतिबद्धता बनाए हुए, इन्हीं के अनुसार कार्य किए जा रहे हैं ।

4

सहकारी सभाओं का विश्लेषण

नीति व उद्देश्य

सरकार की के.एफ.सी.एस. के उद्देश्यों की संकल्पना - केवल उन नष्ट प्राय: वनों, जिनमें वन विभाग के संरक्षण के प्रयासों को विशेष सफलता नहीं मिली, के संरक्षण, सुधार व प्रबन्ध में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना थी । यह सीमित भागीदारी, बीसवीं सदी के दूसरे दशक में सरकार व वन विभाग में प्रचलित आम विचार धारा के बिल्कुल अनुरूप थी । असल में यह पहल ऊपर से प्रवर्तित की गई सहभागी वन प्रबन्धन प्रक्रिया थी । भू-क्षरण को रोकने पर जोर और वन विभाग द्वारा तैयार की गई कार्य योजनाओं के माध्यम से लागू किए गए रकबे बन्द करने के सुझाव यह प्रकट करते हैं कि वन विभाग की यह अवधारणा अधूरी है, कि वन क्षेत्रों में विशेष कर शिवालिक के निचले क्षेत्रों में बढ़ते हुए भू-क्षरण के लिए बेरोकटोक चरान मुख्य कारण था ।

वन उत्पादन को अपने सदस्यों के अधिक से अधिक लाभ के लिए प्रयोग में लाने पर बल देना, वन विभाग द्वारा इमारती लकड़ी की वर्तनदारों को बिक्री से होने वाली आय को बरतनदारों में बांटना, इमारती लकड़ी व बिरोजा की व्यापारियों को बिक्री से होने वाली आय को बांटना और के.एफ.सी.एस. को घास, रेत, बजरी और वन क्षेत्र के अन्य खनिजों की नीलामी से होने वाले लाभ पर अधिकार देना, योजना की दूर-दृष्टि जतलाता है । वन भूमियों से प्राप्त कुछ लाभों को के.एफ.सी.एस. की ओर प्रभाहित होने के लिए अनुमति प्रदान कर, वन विभाग सभाओं के आर्थिक समर्थता और योजनाओं मे उनको निरंतर सहभागिता को सुनिश्चित कर सकता था ।

संस्थागत विश्लेषण

के.एफ.सी.एस. की कुछ मुख्य विशेषताएं परिशिष्ट 4 में दी गई है ।

संस्था के रूप का चयन

गारबेट आयोग ने सिफारिश की थी कि इस प्रयोग की पहल, लोगों और उनके प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके की जानी चाहिए । इस विचार से कि यह प्रदर्शन लोगों के योग्य प्रतिनिधियों के माध्यम से परखे जाऐं - पंचायतों का गठन किया जाना था और वनों के प्रबन्धन का उत्तरदायित्व सौंपा जाना था । यद्यपि भारतीय वन-अधिनियम 1927 में गांवों के वनों सम्बन्धी एक अलग धारा थी, वन विभाग को यह स्वीकार नहीं था कि आयोग द्वारा सुझाई गई ग्रामीण स्तरीय संस्थाएं, उत्तराखण्ड में गठित की गई वन पंचायतों जैसी हों, जो कांगड़ा से बहुत दूर नहीं । इस तरह योजना के आरम्भिक दिनों में जब गारबेट आयोग की सिफारिशें लागू करने का प्रयास किया जा रहा था वन विभाग ने वन पंचायतों के गठन की उपेक्षा की । उनका कथन यह था कि विद्यमान पंचायतों का कार्य प्रशासनिक था और यह कि वनों के प्रबन्धन के लिए अलग संस्था बरतनदारों से ही गठित की जा सकती थी । जबकि यह कुछ पहाड़ी क्षेत्रों के बारे में सत्य हो सकता था, पर वास्तविक तौर पर गांवों को पंचायतों में संघटित करने का काम 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शुरू हुआ और पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों में यह काम 1955 तक पूरा नहीं हुआ था । वर्ष 1940 तक कांगड़ा में कोई पंचायत विद्यमान नहीं थी इसलिए वन विभाग द्वारा अलग संस्था खड़ी करने की बात स्पष्ट नहीं लगती ।

उत्तर-प्रदेश के कुमाऊं व गढ़वाल पहाड़ी क्षेत्रों में स्थिति बिल्कुल भिन्न थी । इमारती लकड़ी व राजस्व सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार की नीतियों द्वारा वनों का अन्धाधुन्ध दोहन व वनों पर समुदायों की पहुंच कम किए जाने के कारण विविध प्रकार के विरोध प्रदर्शन हुए । स्थानीय समुदायों द्वारा वन अन्दोलनों के इस दौर से सन् 1925 में ब्रिटिश सरकार को एक शिकायत कमेटी की स्थापना के लिए बाध्य होना पड़ा - इस कमेटी की स्थापना, लोगों की वन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के उपाय सुझाने के लिए की गई । वन पंचायत (वन प्रबन्धन के लिए स्थानीय चयनित संस्था) प्रणाली का सुझाव दिया गया और

इनको बीसवीं सदी के तीसरे दशक के दौरान कायम किया गया । यह वन-पंचायतें आज तक कार्य कर रही हैं । यह समझ में नहीं आता कि कांगड़ा में वन प्रबन्धन के लिए वन पंचायतें क्यों गठित नहीं की गई ।

के.एफ.सी.एस. भगोटला की 300 कनाल भूमि पर उगा वन, घास इत्यादि उत्पादन दो गांवों में सर्वसम्मति से बांटा जाता था ।

सहकारी सभाओं के माध्यम से कार्य करने का चुनाव करने का साफ तात्पर्य था, वन-विभाग व राजस्व विभाग के साथ सहकारिता विभाग को जोड़ना । सहकारिता विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. की नियमित रूप से विभिन्न प्रकार से, प्रबन्धन यथा निर्वाचन, लेखा प्रबन्ध व लेखा परीक्षा आदि मामले में सहायता की जाती थी । वन सम्बन्धी मामलों में मुख्य रूप से वन विभाग सहायक होता था । पर साक्ष्य मिलता है कि उन विभागों में जिन पर इन नई संस्थाओं के विभिन्न पहलुओं के प्रबन्धन का उत्तरदायित्व था, उन में आपसी तालमेल की कमी और भ्रम की स्थिति बनी रही । लगता है इस समय सरकार की नीति ही के.एफ.सी.एस. के गठन के मामले में उलझन पैदा करने के लिए जिम्मेवार थी ।

यह निर्देश दिया गया था कि जिलाधीश के.एफ.सी.एस. के कुशल संचालन के लिए पूरे तौर पर जिम्मेवार होगा[15] । सहकारिता विभाग की जिम्मेदारी थी के.एफ.सी.एस. का गठन करना और वन विभाग पर के.एफ.सी. एस. की क्रियाशीलता के लिए वन सम्बन्धी पहलु में सहायता करने एवं उनकी सफलता की जांच करने का भार था । परन्तु इन विभागों के कार्य को समन्वित करने अथवा एक दूसरे से जोड़ने के लिए कोई रचनातन्त्र तैयार नहीं किया गया ।

के.एफ.सी.एस. के गठन की दूसरी उलझन यह थी कि इसे सहकारी सभा का गैर लचीला ढांचा व पूर्व निर्मित संस्था का रूप विरासत में मिले थे । सहकारिता के उप नियम पूर्व परिभाषित थे । इसका प्रस्तावित ढांचा जिसके अनुसार इसकी रचना करने का निर्देश हुआ, वह सरकार के सहकारिता क्षेत्र में पूर्व सहकारी सभाओं के क्रियान्वयन प्रक्रिया में तीस वर्ष के अनुभव पर आधारित था । इस कारण उद्देश्यों और प्रक्रियाओं को पुनः परिभाषित करने की कोई गुंजाइश नहीं बची थी । इसके साथ ही सहभागी वन प्रबन्ध के लिए एक सान्झी मर्यादा वाली संस्था के रूप में पंजीकरण से के.एफ.सी.एस. को एक अनोखी शक्ति मिली जिसे वन विभाग द्वारा अपनी विचारधारा या समर्थन में परिवर्तन होने पर भी दबाया नहीं जा सकता था ।

बिल्कूल इसी कारण वन विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. के विघटन के सभी प्रयास, सहकारिता विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त सहकारी सभाओं के रूप में इनकी स्वायत्ता को हानि नहीं पहुंचा सके । कुल मिलाकर इसकी शक्तियां व कमजोरियां होते हुए भी के.एफ.सी.एस. की पहल की तुलना उत्तर प्रदेश के दूसरे भागों में गठित वन पंचायतों से करनी चाहिए ।

सहकारिता विभाग, वन विभाग और प्रशासन विभाग जो के.एफ.सी.एस. के विभिन्न पहलुओं के कार्य के लिए उत्तरदायी थे उनके समन्वयन के लिए कोई नियमित मंच का न होना एक गम्भीर संस्थागत कमजोरी थी । इस योजना के आरम्भिक वर्षो में सहकारिता व वन विभाग के शीर्षस्थ अधिकारियों द्वारा सफल के.एफ.सी.एस. के निरीक्षण के बाद की गई रिपोर्टो में इनके कार्य की सराहना की गई है । बाद में प्रस्तुत समन्वयन का ढंग पत्राचार द्वारा सलाह

मशविरा के रूप में बदल गया । इस कठिन प्रक्रिया का कारण था अन्तर्विभागीय बहुस्तरीय अफसरशाही ।

सदस्यता की कसौटी

सदस्यता के लिए साधारण योग्यताओं तथा्, 18 वर्ष आयु का होना, दीवालिया न होना या दिमागी तौर पर स्वस्थ होना, के अतिरिक्त मुख्य शर्त यह भी थी कि प्रत्येक सदस्य का वैध हिस्सा, के.एफ.सी.एस. का प्रबन्ध के लिए दिए जाने वाले वनों में होना चाहिए । भूमि बन्दोवस्त के सिद्धान्तों के अनुसार उन्हीं लोगों को शामलात या वनों में अधिकार होता था जिनके नाम अपने स्वामित्व की कृषि भूमि हो (खेवटदार) । इस कसौटी के कारण वह सभी जातियां जिनके पास भूमि नहीं थी, और बहुत सी महिलाएं स्वत: सदस्यता अधिकार से बाहर हो गई क्योंकि उनके वनों में अधिकारों का कोई लिखित ब्योरा नहीं था ।

सहभागी वन प्रबन्धन की मौलिक इकाई प्रबन्ध के लिए शामिल किए जाने वाले ऐसे वन होते थे जिन वनों पर पहले से ही लिखित अधिकार दर्ज थे, यह आवश्यक नहीं कि ऐसे अधिकार सब गांव वासियों को प्राप्त हों ।

इसके अतिरिक्त-क्योंकि वही खेवटदार सदस्य बन सकते थे जिनके अधिकार के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धन में लिए जाने वाले वनों में होते थे, वह खेवटदार जिनके अधिकार के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वनों के बजाए दूसरे वनों में थे वह सदस्य नहीं बन सकते थे । के.एफ.सी.एस. खलेट की निरीक्षण टिप्पणी से पता चलता है कि 11 वर्ष के कार्यकाल के बाद भी गांव के 364 खेवटदारों में से 231 खेवटदार ही के.एफ.सी.एस. के सदस्य बने थे । भूमिहीन और बहुत से खेवटदारों व बरतनदारों का इस प्रकार का बहिष्कार - के.एफ.सी. एस. के जंगलों के प्रबन्धन से प्राप्त होने वाले लाभ के विषम वितरण का कारण बना । जिसका जिक्र 1955 को पंजाब के मुख्यमन्त्री की टिप्पणी में भी है ।

के.एफ.सी.एस. का गठन के समय, गांव का जातिगत ढां़चा, पक्के तौर पर श्रेणी बद्ध था, जिसका नमूना के.एफ.सी.एस. की प्राथमिक सदस्यता में भी दिखाइ देता है । 1971 के बाद बहुत सी के.एफ.सी.एस. ने, काफी हद तक

भागीदारी में विषमता पर काबू पाने में सफलता प्राप्त की । अनेक भू-सुधार व फसल बटाईगिरी अधिनियमों को उत्साहपूर्वक लागू करने से अधिकांश निवासी परिवार कम से कम 0.4 हैक्टर भूमि के मालिक हो गए । दूसरे, उन परिवारों को, जो के.एफ.सी.एस. के गठन के बाद गांव में बसे और उन्होंने भूमि खरीदी, भी बर्तनदार माने गये उन्हें बहुत सी स्थितियों में के.एफ.सी.एस. का सदस्य बनाया गया और वनों से होने वाली आय में भी भागीदार बनाया । नूरपुर तहसील में गद्दी और गुज्जर (निम्न जाति समुदाय) आज भी के.एफ.सी.एस. के सदस्य है पर ऊंची जातियों विशेषकर ब्राह्मण और राजपूतों (जिला की कुल जनसंख्या का 34 प्रतिशत) का नियन्त्रण प्रबन्ध समिति में उनके भारी बहुमत से स्पष्ट दिखता है । महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं होता था क्योंकि उनके नाम जमीन का स्वामित्व दर्ज नहीं होता था । 10 प्रतिशत से भी कम ही सदस्य महिलाएं थीं और बहुत सी सभाओं में तो एक भी महिला सदस्य नहीं था, केवल गहीन-लगोड़ के.एफ.सी.एस. में एक महिला कार्यकारिणी की सदस्य है ।

अधिकार

अधिकारों और उत्तरदायित्वों के संतुलन को पुनः परिभाषित करते हुए सामुदायिक नियन्त्रण की व्यवहारिक प्रणाली का पुनः स्थापित करने का प्रयास करना सम्भवतः इस पहल की अतिमौलिक उपलब्धि थी, के.एफ.सी.एस. में सम्मिलित होने के लिए, प्रत्येक सदस्य द्वारा अपने व्यक्तिगत अधिकारों को सभा के अधीन कर देना, पूर्व-शर्त थी । (अनुबन्ध परिशिष्ट 2) । वनों का प्रबन्धन करना और अपने सभी सदस्यों को उनके अधिकारों के अनुरूप लाभ मिले, यह सुनिश्चित करना सभा की जिम्मवारी थी ।

इस तरह, सभी अधिकार स्वामियों के दावों को पूरा करने की वनों की योग्यता पर भार डाले बिना, किसी एक अधिकार स्वामी की विशिष्ट भागों की श्रेष्ठता पर नियन्त्रण रखा जा सका जिससे, उपलब्ध एवं निकासी योग्य फालतू उत्पादन को अधिकार स्वामियों में बराबर वितरण करना सम्भव हुआ ।

इससे दोहन की व टिकाऊ व्यवस्था कायम करने के लिए आवश्यक नियन्त्रण प्रचलन हुआ । के.एफ.सी.एस. कार्यकारिणी के निर्देशों के अनुसार वनों के संरक्षण, आरक्षण व संवर्धन के लिए काम करना प्रत्येक सदस्य का

उत्तरदायित्व हो गया ताकि सामुदायिक, संसाधन भण्डार में से व्यक्तिगत और सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके ।

क्षेत्रों के चयन की कसौटी

के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए विस्तृत प्रक्रिया 1949 में अधिसूचित की गई । कर्मचारी वर्ग की कमी के कारण कार्यक्षेत्र व्यास नदी के उत्तर में स्थित कांगड़ा जिला के भागों तक ही सीमित रहा । यद्यपि मौजा ही मौलिक आर्थिक इकाई मानी गई थी यदि कोई प्रशासनिक समस्या खड़ी हो जाए तो एक टीका या टीकों के समूह को व्यवहारिक इकाई माना जा सकता था । कार्यक्षेत्र में उपलब्ध स्थिति के आधार पर छोटी से छोटी इकाई के चयन में उपरोक्त लचीलापन, कांगड़ा में प्रचलित उलझावपूर्व अधिकार व्यवस्था के बावजूद, योजना को व्यवहारिक बनाने में लाभदायक सिद्ध हुआ ।

के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए क्षेत्रों के चयन में ऐसे गांवों को अधिमान दिया गया जिनमें भूक्षरण एवं अन्धाधुन्ध वन-कटान से ग्रस्त बड़े आकार के इक्ट्ठे-2 अप्रबन्धित बंजर क्षेत्र हों । ऐसे गांव जिनमें पहले से ही सहकारी सभाएं होती थी उन्हें भी के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए बेहतर समझा गया । वन विभाग का विश्वास था कि टीकों और बर्तनदारों की कम संख्या, संस्था के काम को सुगम कर देगी । आरम्भ में इस परियोजना प्रयोग की क्षमता को प्रदर्शित करने के लिए उन गांवों को चुना गया जिनकी भूमि पर स्वस्थ व घने वन खड़े थे । उदाहरण के लिए तृपल को के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए चुना गया और क्षेत्र के अन्य बहुत से गांव जिनमें नष्ट प्राय: वन व भूमि थे छोड़ दिए गए । यह बात उपरोक्त सोच की संवेदनशीलता प्रदर्शित करती है इससे के.एफ.सी.एस. योजना को किसानों के सरकार के प्रति शंकालु व्यवहार के बावजूद, लोकप्रियता प्राप्त हुई ।

योजना के विस्तार का तरीका

सहकारिता उप-निरीक्षक जो वन सहकारी सभा के लिए तैनात होता था के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए उत्तरदायी था । चयन के बाद वह वनमण्डल अधिकारी के पास उपस्थिति देता था और वनमण्डल अधिकारी या उसका कोई सहायक अधिकारी उपनिरीक्षक के साथ क्षेत्र का दौरा करता था । यदि वह

गांव को शामिल करने का निर्णय करते तो बर्तनदारों और वन विभाग के कर्मचारियों के साथ बैठक की जाती और योजना के विस्तृत विवरण पर, एवं इससे होने वाले लाभों पर चर्चा होती । उपनिरीक्षक सदस्यों की सूचि तैयार करता और उनसे अनुबन्ध पत्रों पर हस्ताक्षर करवाता । प्रत्येक टीका में बर्तनदारों को शामिल करने के लिए मीटिंग की जाती । अनुपस्थित रहने वालों की भी उपेक्षा नहीं की जाती और उनकी स्वीकृति निर्दिष्ट प्रपत्र पर या उनके नजदीकी सम्बन्धी से ले ली जाती । इस तरह सम्बन्धित विभागों का सक्रिय सहयोग क्षेत्रीय स्तर पर सुनिश्चित किया जाता । दुर्भाग्यवश उच्च स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में इस स्तर का समन्वय गायब था ।

लोगों की सहभागिता

के.एफ.सी.एस. के बारे में अधिसूचनाओं में कहीं भी लोगों की सहभागिता का जिक्र नहीं है । पर कार्य-योजना बनाने के दौरान सभा एवं ग्रामीणों[19] से विचार विमर्श करने पर बल दिए जाने से पता चलता है कि परामर्शक भागीदारी के लिए स्थान रखा गया था । के.एफ.सी.एस. के अतिरिक्त अन्य वनों में जिनका संरक्षण व प्रबन्धन वन विभाग द्वारा पारम्परिक ढंग से किया जाता था, ऐसा प्रावधान उस समय नहीं था । बीसवीं सदी के चौथे दशक में के.एफ.सी.एस. के गठन के समय जो प्रक्रियाएं सरकार ने आरम्भ की उनका विश्लेषण करना आवश्यक है । क्या यह नवीन सामुदायिक संस्थाए थी या वन एवं सहकारिता विभाग द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित सुविधाजनक साधन मात्र थी, ? उतना ही गम्भीर यह विषय है कि गांव के किन वर्गों ने के.एफ.सी.एस. को सामुदायिक वन प्रबन्धन के एक रचना तन्त्र के रूप में स्वीकार किया ? आर्थिक व सामाजिक भूमिका क्या थी और स्थापित ढ़ाचा कितना सहभागिता-परक था ?

इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए ठोस व वास्तविक अभिलेख तलाशना कठिन है । बीसवीं सदी के चौथे दशक (1940-50) में गांव के लोग अधिकतर अनपढ़ थे । कुछ लोग जो पढ़े लिखे थे वह केवल उर्दू भाषा ही लिखते और पढ़ सकते थे जिस कारण कोई गैर सरकारी, स्वतन्त्र दस्तावेज़ जिसमें लोगों के विचारों व अनुभवों का जिक्र हो, उपलब्ध नहीं ।

पिछली अर्ध-शताब्दी के दौरान बहुत सी सभाओं के अभिलेख तो खो गए हैं परन्तु के.एफ.सी.एस. की बैठकों के विस्तृत विवरण काफी मात्रा में उपलब्ध हैं । के.एफ.सी.एस. के बारे में आरम्भिक काल के मौखिक विवरण भी अब उपलब्ध नहीं क्योंकि उस समय की नेतृत्व करने वाली पीढ़ी के लोग अधिकतर चल बसे हैं । सहायक पंजीकार (सहायक सभाएं) के कार्यालय में के.एफ.सी.एस. के पंजीकरण सम्बन्धी फाइलों में फिर भी पत्राचार स्मारक पत्रों, निरीक्षण टिप्पणियों और झगड़ों के बहस सम्बन्धी विवरण मिल रहे हैं ।

उपलब्ध प्राथमिक आंकड़ों व थोड़े से गौण आंकड़ों से पता चलता है कि सरकार ने स्थानीय लोगों को मान्य नेतृत्व के माध्यम से के.एफ.सी.एस. योजना को आगे बढ़ाया । ऐसा करने पर भी के.एफ.सी.एस. के गठन के आरम्भिक दिनों में भ्रमजाल बना रहा - क्योंकि गांवों के लोग कार्ययोजना में दिए गए सुझावों पर बंटे हुए थे । सबसे तीखे झगड़े-रकबे बन्द करने के विषय पर होते थे । साक्ष्य मिलता है कि विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन विरोधी गुटों द्वारा विरोध किए गए, विशेषकर तब जब सरकार के.एफ.सी.एस. के गठन के लिए बैठकें आयोजित करती ।

इस आरम्भिक अलगाव के उपरान्त, जब सभाओं को आय और लाभ प्राप्त होने लगे, सदस्यता-अभियान ने जोर पकड़ा । सदस्यों ने नि:शुल्क पेड़ लगाने का काम हाथ में लिया । उदाहरण के तौर पर के.एफ.सी.एस. परौर के प्रत्येक सदस्य ने प्रति वर्ष पांच पांच पेड़ लगाए । राखा और वन-अधिकारियों को सेवाओं के लिए नकद व जिन्स के रूप में अदायगी की जाती थी । आम सभा में लिए गए निर्णय के आधार पर सदस्यों ने राखा को जिन्स के रूप में अदायगी करने को समर्थन दिया । जो के.एफ.सी.एस. के गठन के समय डेढ़ किलो प्रति परिवार वार्षिक था और अब प्रति राखा 700 कि.ग्रा. प्रतिवर्ष दिया जाता है । कुछ के.एफ.सी.एस. में सदस्य अपना हिस्सा सभा को दान कर देते थे, जिसे सभा विकास कार्यों पर व्यय करती थी । के.एफ.सी.एस. खलेट ने इस प्रकार एक पंचायत घर का निर्माण करवाया ।

के.एफ.सी.एस. की कार्य योजना के माध्यम से संरक्षण करने के लिए वन विभाग का रकबा-बन्दी करके व्यापारिक प्रजातियों विशेषकर चील के रोपण का

चहेता सुझाव यह प्रदर्शित करता है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा अपने वनों का प्रबन्ध करने के लिए प्रयुक्त वन संरक्षण व वनवर्धन प्रणाली पर वन विभाग का कड़ा नियन्त्रण था ।

राजस्व अभिमुखता पर आधारित व्यापारिक (वानिकी) से यह स्थिति आ गई कि आज जिला के बहुत से के.एफ.सी.एस. के वन केवल चील से भरे पड़े है । इस लिए के.एफ.सी.एस. गांव समुदायों को पारम्परिक वन संरक्षण प्रणाली में जोड़ने अथवा सहायक बनाने के लिए माध्यम मात्र लगती है । खेवटदार के.एफ.सी.एस. सहभागी इसलिए बने क्योंकि उन्हें के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वनों से, वन विभाग के पारम्परिक प्रबन्धन में रखे गए इन्हीं वनों की तुलना में अधिक आय व लाभ प्राप्त होता था ।

इस के पीछे गति देने वाली शक्ति को के.एफ.सी.एस. भगोटला के उदाहरण से आंका जा सकता है (तालिका न. 1 देखें)

वित्तीय प्रणाली

योजना में भुगतान करने और न करने वाली दोनों प्रकार की के.एफ.सी. एस. के गठन की आज्ञा थी । सोसाइटी एक प्रकार की हो या दूसरी प्रकार की यह निर्णय लेने के लिए क्या कसौटी प्रयोग की गई । क्या कार्य कुशलता व अच्छा प्रबन्ध सभा को आर्थिक तौर पर समृद्ध और आत्मनिर्भर बनाते है? इसी आधार पर सोसाइटी को भुगतान करने वाली सोसाइटी बनने की आज्ञा दी जाए । क्षेत्रीय अध्ययन बताते हैं कि जहां सभा को भाग्यवश बहुमूल्य और राजस्व देने वाले वन क्षेत्र प्रबन्धन के लिए प्राप्त हो जाते - इसी से उसका दर्जा समृद्ध बन जाता । सभा की आय के मुख्य स्त्रोत थे - बिक्री की गई इमारती लकड़ी में प्राप्त हिस्सा और ईंधन, घास, सफेद मिट्टी, रेत, बजरी एवं अन्य उत्पादों की बिक्री ।

कांगड़ा क्षेत्र की सहकारी वन सभाएं जिनके भूक्षेत्र में चील, खैर व शीशम के पेड़ थे, अन्ततः भुगतान करने वाली बन गई कुछ अपवाद है जैसे खनियारा के.एफ.सी.एस. अब भी-इसके पास स्थित पंचायत भूमि में स्लेट की खदान से इस सभा के वनों को ठेकेदारों द्वारा किए जाने वाले नुकसान की भरपाई के लिए जुर्मानों से भारी राशि आर्जित करती है ।

उन के.एफ.सी.एस. को जिन्हें घटिया किस्म की भूमि मिली, जिसमें नाममात्र के वन थे, पुनरूत्पादन के लिए (संरक्षण के बावजूद) समय लगा - जब तक कि अन्ततः सभा को उनसे आय होने लगती । ऐसी सभाओं को भुगतान न करने वाली सभाएं घोषित किया गया और सभा के राजस्व से अधिक, कार्य और कर्मचारियों पर होने वाला व्यय सरकार ने सभा की स्वीकृति की तिथि से लेकर 10 वर्ष तक वहन किया । इसके अतिरिक्त 600/- रूपये वार्षिक सहायक अनुदान भी दिया । सोलह के.एफ.सी.एस. आरम्भ से ही भुगतान करने योग्य सभाएं थी और शेष धीरे-धीरे कुछ वर्षो में उस स्तर पर पहुंच गई । वर्ष 1970 तक दो या तीन को छोड़ कर सभी भुगतान करने योग्य सभाएं बन चुकी थी । के.एफ.सी.एस. के आय के स्त्रोत निम्नलिखित थे ।

सहायक अनुदान

सरकार द्वारायह संकट कालीन सहायता वास्तव में विशेष अनुदान नहीं थी पर मुख्यतः यह के.एफ.सी.एस. के जमींदार सदस्यों के प्रति उनके जमींदारी हिस्से के रूप में सरकार द्वारा देयता राशि थी । इस हिस्से के के.एफ.सी.एस. के माध्यम से वितरण को, आय कम और वन विभाग द्वारा बकाया देय का ठीक समय पर किया गया भुगतान ज्यादा समझना चाहिए, जो अधिकतर सदस्यों द्वारा दिए जाने वाले लगान की अदायगी मात्र के लिए काफी होता था । सहायक अनुदान के रूप में दी गई राशियों में भारी भिन्नता होती थी जैसे कि त्रिपाल के के.एफ.सी.एस. के अभिलेखों से प्रकट होता है ।

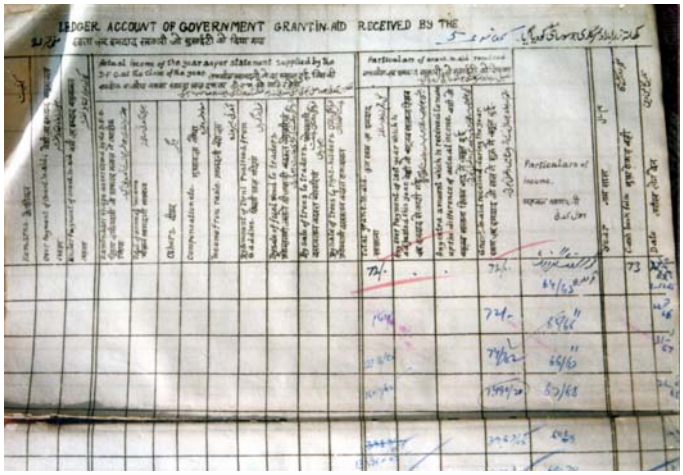

के.एफ.सी.एस. मरण्डा भंगियार द्वारा आज तक प्राप्त सहायक अनुदान का अभिलेख

तालिका 3: के.एफ.सी.एस. त्रिप्पल द्वारा 1947 से 1969 तक प्राप्त सहायक अनुदान

तथि	राशि
21-7-46	50.00
19-7-48	96.00
14-1-49	120.00
31-3-49	96.00
15-12-49	216.00
30-6-50	25.00
10-2-51	290.00
30-12-52	59.80
28-9-53	1342.10
3-2-56	335.60
14-8-56	50.00
10-6-57	170.60
14-6-58	367.00
26-5-59	388.00

स्त्रोत :- के.एफ.सी.एस. त्रिप्पल के वित्तीय अभिलेख

इमारती लकड़ी की बिक्री

खड़े पेड़ छोटे-छोटे ठेकेदारों को बेच दिए जाते थे (व्यापारी दरों पर जो जमींदारी दरों से काफी ज्यादा थी) इन्हें लट्ठों या सलीपरों में परिवर्तित किया जाता और रेलवे लाइनें बिछाने के लिए नदियों द्वारा या ट्रकों द्वारा पठानकोट ले जाया जाता था । अधिक मांग चील की लकड़ी की थी जो कांगड़ा के ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों से प्राप्त चीड़ से घटिया तो होती थी, परन्तु पठानकोट में सस्ती दरों पर बिकती थी ।

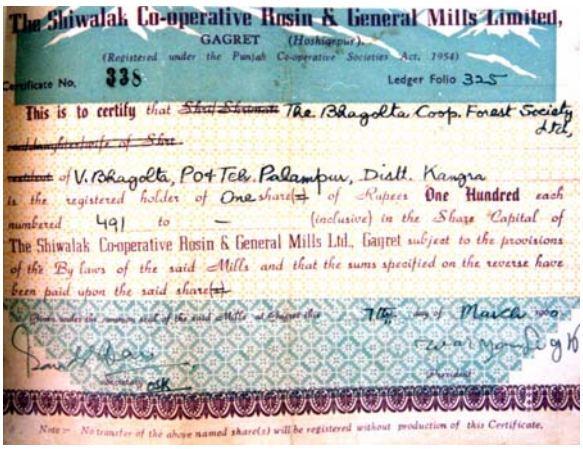

The Shiwalak Co-operative Rosin & General Mills Limited,
GAGRET (Hoshiarpur).
(Registered under the Punjab Co-operative Societies Act, 1954)
Certificate No. 338 Ledger Folio 325

This is to certify that ~~Shri Shrimati~~ The Bhagolta Coop. Forest Society Ltd, of V. Bhagolta, P.O. & Teh. Palampur, Distt. Kangra is the registered holder of One share(s) of Rupees One Hundred each numbered 491 to — (inclusive) in the Share Capital of The Shiwalak Co-operative Rosin & General Mills Ltd., Gagret subject to the provisions of the By laws of the said Mills and that the sums specified on the reverse have been paid upon the said share(s).

7th day of March 1960

Secretary President

Note :- No transfer of the above named share(s) will be registered without production of this Certificate.

सामने, शिवालिक कोप्रेटिव रोज़िन एण्ड जनरल मिल्ज़ कम्पनी लि. का शेयर प्रमाण पत्र दिया गया है । कम्पनी को के.एफ.सी.एस. का सांकेतिक सदस्य बनाया गया, ताकि इसे उस के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणी का सदस्य बनाया जा सके जिससे यह अपनी जरूरत के लिए बिरोजा खरीदती थी ।

बिरोजा की बिक्री

कांगड़ा और नूरपुर वन-मण्डल की 15 के.एफ.सी.एस. में से बहुतों के लिए चील से निकला बिरोजा निर्यात के लिए मुख्य व महत्वपूर्ण उत्पाद था और राजस्व का स्रोत भी। वन विभाग बिरोजा निकालने के लिए प्रति क्विंटल 55 से 65 रूपये वसूल करता था । वन विभाग बिरोजा निकासी सम्बन्धित वन मण्डल अधिकारियों के माध्यम से करता था और बिरोजा खुली नीलामी द्वारा बेच दिया जाता या

सरकारी क्षेत्र के बिरोज़ा व तारपीन कारखाना नाहन को अनुबन्धित दरों पर दे दिया जाता । वन विभाग बिरोज़ा निकासी एकत्रीकरण और देखरेख पर हुए। खर्चो को काटकर शुद्ध लाभ के.एफ.सी.एस. को दे देता था । तालिका 4 में 1964 से 1967 तक इन के.एफ.सी.एस. द्वारा किया गया बिरोजा का औसत वार्षिक संग्रह व प्राप्त राजस्व - दिखाया गया है ।

वर्ष 1964 और 1967 के बीच कांगड़ा व नूरपुर वन मण्डल की 15 के.एफ.सी.एस. ने मिलकर प्रतिवर्ष औसत 1390 क्विंटल बिरोजा उत्पादन किया और 86,500/- रूपये का राजस्व प्राप्त किया ।

तालिका 4: 1964 और 1967 के बीच कांगड़ा की औसत बिरोज संग्रह व औस्त आय

कांगड़ा वन मण्डल		
के.एफ.सी.एस.	बिरोजा की वार्षिक औस्त क्विंटल में	राजस्व प्रतिवर्ष (औसत रू. में)
पालमपुर रेंज		
भगोटला	51	3680
गग्गल	113	11830
खलेट	52	2620
कुसमल	168	10310
पनापरी	137	6060
परौर	72	3100
कूल	593	37600
धर्मशाला रेंज		
घरो	1.3	70
सराह	10.3	580
सधेड़	3.2	170
कूल	15	820
ज्वालामुखी रेंज		
दनोआ	204	10150
अरला	172	9990
गुम्बर	43	2830
कूल	418	22970
नूरपुर वन मण्डल		
गहीन लगोड़	153	11280
लाहड़	78	5510
कूल	231	16790
इन्दौरा रेंज		
रै	133	8310
कूल	133	8310

के.एफ.सी.एस. मनियारा का वन जिसमें से मौल खडड् बहती है । वर्ष 1980 तक इस खडड् से रेत, बजरी निकालने के लिए खनिज निकासी के लिए पट्टा के.एफ.सी.एस. ही देती थी ।

खैर से आय

नूरपुर वनमण्डल और देहरा रेंज की कुछ के.एफ.सी.एस. के लिए खैर (एकेशिया कैटेचु), शिवालिक के निचले भागों के झाड़ी जंगलों में बहुतायत में पाई जाने वाली प्रजाति थी, इनके के.एफ.सी.एस. के लिए आय की दृष्टि से यह चील का बहुमूल्य विकल्प सिद्ध हुआ । खैर के पेड़ बेचे गए और उनसे सेहत और औषधि की दृष्टि से बहुमूल्य एवं लाभप्रद कत्था नामक उत्पाद निकाला गया ं के.एफ.सी.एस. के लिए वर्ष 1965 तक खैर की कौपिस कटान प्रणाली काफी लाभदायक बन गयी जिससे उसे 2000 से 3000 रूपये प्रति हैक्टयर अधिक मूल्य प्राप्त होने लगा । वर्ष 1972 के बाद वन विभाग ने के. एफ.सी.एस. के वनों में खैर कटान व बिक्री का काम स्वंय करना आरम्भ किया । कत्थे का मण्डी भाव 10,000/- रूपये प्रति किलोग्राम पहुंच गया । पर वन विभाग ने के.एफ.सी.एस. का हिस्सा अदा नहीं किया । (केवल त्रिप्पल के.एफ.सी.एस. का हिस्सा राशि 1,50,000/- रूपये बनती है)

विविध

ईधन व कोयला (लकड़ी का) झाड़ी जंगलों के उत्पाद होते थे पर इन जंगलों को खड़ी अवस्था में भी बेच दिया जाता । इनकी स्थानीय क्षेत्रों व सेना–छावनियों यथा योल में भारी मांग होती थी । नूरपुर वन मण्डल के के.एफ.सी.एस. वनों में पाए जाने वाले बांस के झाड़ भी खड़े ही बेच दिए जाते । के.एफ.सी.एस. के आय के गौण स्रोत थे प्रतिवर्ष नीलाम होने वाले घास, स्थानीय घरों के निर्माण के लिए पत्थर सरकारी भवनों के निर्माण के लिए रेत व बजरी और चुल्हे पोतने के लिए सफेद मिट्टी की बिक्री ।

समग्र प्रबन्ध

कुल मिला कर के.एफ.सी.एस. अपने सदस्यों को उपभोग योग्य पदार्थो की बिक्री से स्थायी आय मुहैया करवाती थी । इससे सदस्यों को वनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन के लिए सशक्त प्रोत्साहन मिला : कुछ के.एफ.सी.एस. ने तो अपने सदस्यों के लिए प्रतिवर्ष पेड़ लगाने का लक्ष्य नियत कर दिया । वन विभाग के पर्यवेक्षण से वनों से उड़ाऊ निकासी रोकने के लिए निरन्तर देखरेख सुनिश्चित हुई ।

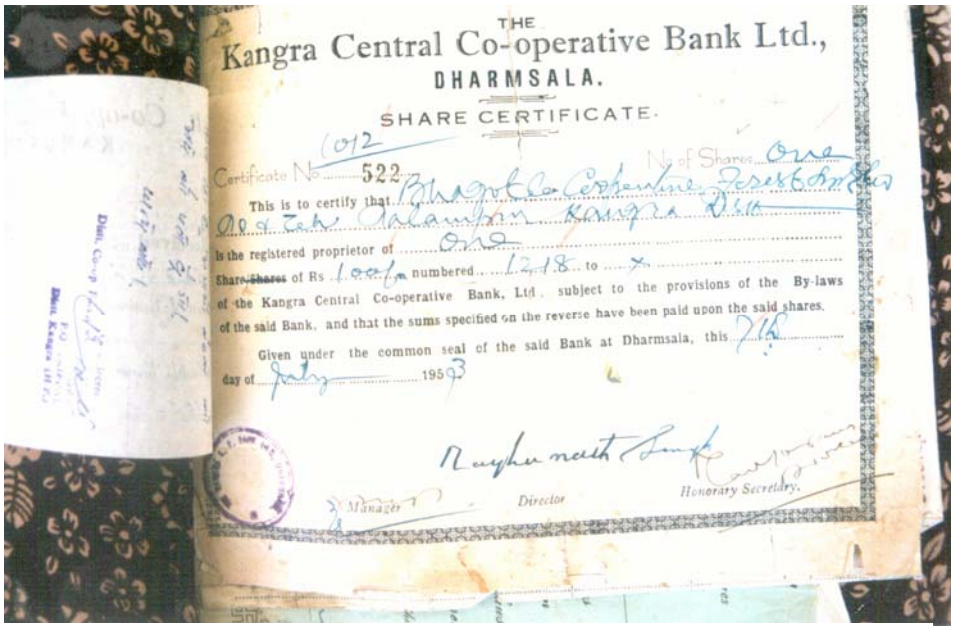

THE
Kangra Central Co-operative Bank Ltd.,
DHARMSALA.
SHARE CERTIFICATE.
Certificate No. 522 No. of Shares One
This is to certify that ...
is the registered proprietor of One
Share/Shares of Rs 100/- numbered 1218 to x
of the Kangra Central Co-operative Bank, Ltd. subject to the provisions of the By-laws of the said Bank, and that the sums specified on the reverse have been paid upon the said shares.
Given under the common seal of the said Bank at Dharmsala, this ...
day of July 1953
Manager Director Honorary Secretary.

के.एफ.सी.एस. भगोटला के जिला सहकारी बैंक में शेयर शर्टिफिकेट जहाँ इसके खाते हैं ।

कोष–राशियां के.एफ.सी.एस. के नाम बैंक खातों में रखी जाती और सरकारी अदायगियां सीधे बैंक को भेजी जाती । वार्षिक लेखा जांच सहकारिता विभाग द्वारा की जाती थी ।

लेखा–परीक्षित बैलेंस शीट सम्बन्धित वन मण्डल अधिकारी को भेजी जाती थी और उस द्वारा सत्यापन और अनुमोदन के उपरान्त ही अगले वर्ष की सरकारी वित्तीय सहायता के.एफ.सी.एस. को मिल पाती ।

इक्की दुक्की मिसालें वित्तीय दुष्प्रबन्ध एवं दुरूपयोग की अवश्य मिलती हैं । वह

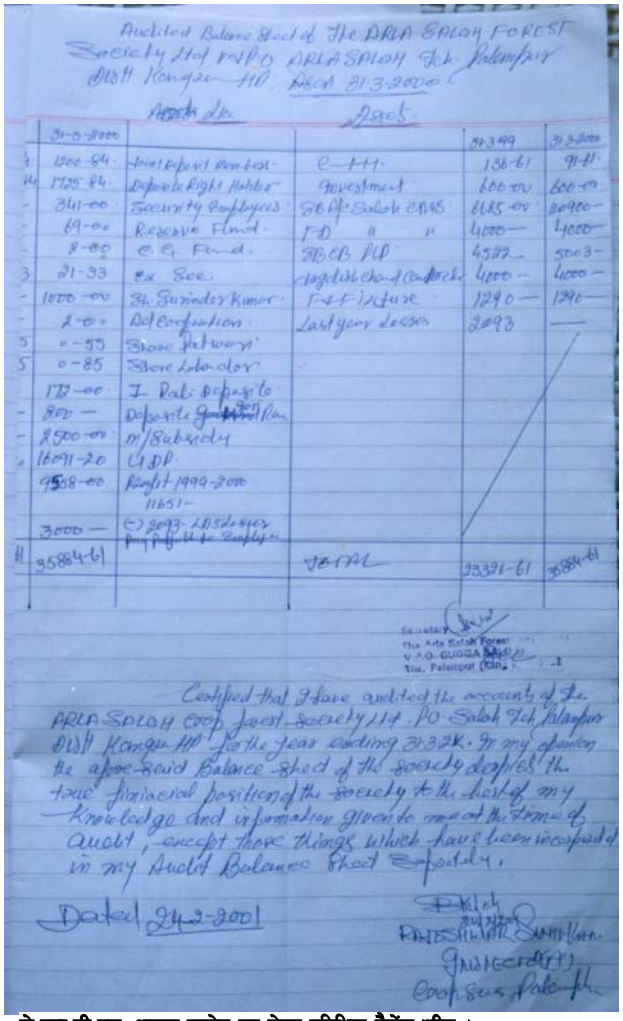

Audited Balance Sheet of The ARLA SALOH FOREST Society Ltd. V&PO ARLA SALOH Teh. Palampur Distt. Kangra HP As on 31-3-2000

31-3-2000	Liabilities	Assets	31-3-99	31-3-2000
1200-84	[illegible] Member	C-H	136-61	91-61
1725-84	Deposits Right Holder	Investment	600-00	600-00
341-00	Security Employees	SB A/c Saloh CBS	6625-00	20900-
69-00	Reserve Fund	FD " "	4000—	4000—
8-00	C.G. Fund	SBCB PLP	4522-	5003-
21-33	Ex Soc.	[illegible]	4000-	4000-
1000-00	Sh. Surinder Kumar	F+Fixture	1290—	1290—
2-00	[illegible]	Last year losses	2093	—
0-55	Share Patwari			
0-85	Share Lambardar			
172-00	[illegible]			
800 —	Deposits [illegible]			
2500-00	M/Subsidy			
16091-20	UDP			
9558-00	Profit 1999-2000 11651–			
3000 —	(-) 2093 [illegible]			
35884-61		TOTAL	23321-61	35884-61

Secretary
The Arla Saloh Forest
V.P.O. GUGGA SALOH
Teh. Palampur (Kangra)

Certified that I have audited the accounts of the ARLA SALOH Coop. Forest Society Ltd. PO Saloh Teh Palampur Distt Kangra HP for the year ending 31-3-2K. In my opinion the afore-said Balance Sheet of the society depicts the true financial position of the society to the best of my knowledge and information given to me at the time of audit, except those things which have been incorporated in my Audit Balance Sheet Separately.

Dated 24-2-2001

[illegible]
Coop. Soc. Palampur

के.एफ.सी.एस. अरला सलोह का लेखा परिक्षित बैलेंस शीट ।

भी आरम्भिक काल की किन्तु इनमें बड़ी राशियां संलिप्त नहीं थीं और न ही यह योजना बद्ध प्रयास होता था ।

पंजाब के राजनैतिक नियन्त्रण के दिनों में लेखा–जोखा प्रणाली जो सहकारिता विभाग के के.एफ.सी.एस. का लेखा देखने वाले प्रभाग ने विकसित की वह अत्यन्त विकट थी ।

ऐसा प्रकट रूप से विभागीय आवश्यकता के लिए किया गया था, के.एफ.सी.एस. को विचार में रखकर नहीं । के.एफ.सी.एस. के लिए तो सरल

लेखा पद्धति चाहिए थी । जिसमें आन्तरिक नियन्त्रण व सन्तुलन हो, जिन्हें सभाकार्यकारिणी स्वंय लागू कर सके ।

बीसवीं सदी के छठे दशक के अन्त और सातवें दशक के आरम्भ में, अचानक बिना कोई सूचना दिए और के.एफ.सी.एस. से बातचीत किए, इस स्थिति को समाप्त कर दिया । इमारती लकड़ी के अतिरिक्त सभी वन उत्पाद जो कांगड़ा के वनों से प्राप्त होते थे, उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया और के. एफ.सी.एस. को उनके वनों की नीलामी से प्राप्त लाभ में से मिलने वाले हिस्से (हक चोहारम) से वंचित कर दिया । अब चील, खैर और ईधन की लकड़ी वाले पेड़ों के कटान और बिक्री का सारे का सारा काम और उससे मिलने वाला लाभ सीधे वन निगम या वन विभाग को मिल गया । बिरोजे की बिक्री से लाभ का भी कोई भाग के.एफ.सी.एस. के लिए नहीं रखा गया

लगभग ठीक उस समय जब के.एफ.सी.एस. वित्तीय व आर्थिक तौर पर स्वतन्त्र और व्यवहारिक बनने जा रही थी, उनके बहुत से आय के स्रोत और प्रोत्साहन जिनके बूते पर सामुदायिक वन प्रबन्धन अग्रसर हुआ, वापिस ले लिए गए ।

इससे भी बुरी बात यह हुई कि 1973 के बाद के.एफ.सी.एस. परियोजना पुन: अधिसूचित नहीं की गई और उन्हें "अवैधतौर पर लाभ कमाने वाली अनधिकृत संस्थाए" घोषित कर दिया गया । विशेषकर सरकारी भूमि से घास की बिक्री पर लाभ कमाने के लिए ।

अभी तक कार्य कर रही के.एफ.सी.एस. की, घास की बिक्री से और सहकारिता विभाग से मिलने वाले प्रबन्ध-अनुदान से होने वाली औसत आय 1500/- रूपये से 3000/- रूपये वार्षिक है । जो मात्र अपने कर्मचारियों, वन अधिकारियों और राखों को मामूली वेतन देने के लिए काफी होती है ।

वन प्रबन्धन प्रणालियां

के.एफ.सी.एस. के अधीन भूमि की किस्में

के.एफ.सी.एस. भूमि की सभी किस्मों का एक साथ प्रबन्ध करती थी । जैसा कि तालिका 5 में दर्शाया गया है । विस्तृत विवरण परिशिष्ट 1 में

उपलब्ध है । लगभग सभी प्रकार की भूमि के.एफ.सी.एस. को प्रबन्धन के लिए दी गई यहां तक कि आरक्षित वनों के नष्ट प्राय: क्षेत्र भी जिनमें बर्तनदारी हक शून्य होते थे समान्यता: अलंघनीय माना जाता था ।

तालिका 5: के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन किस्में			
आरक्षित वन	आर.एफ.	3 %	636 है.
सीमाङ्कित संरक्षित वन	डी.पी.एफ.	30%	6984 है.
असीमाङ्कित संरक्षित वन	यू.पी.एफ.	49%	11480 है.
अवर्गीकृत वन	यू.एफ.	14%	3282 है.
वन माफी वन	बी.एम	0.3%	71 है.
शामलात भूमि	पी.डब्ल्यू	0.4%	94 है.
निजी बंजर भूमि	एम.एस.	1%	392 है.
मलकीयत शामलात		2%	424 है.
कुल			23363 है.

टिप्पणी–सभा अनुसार विवरण परिशिष्ट 2 में उपलब्ध है । वैसी भूमियॉं जो चाय बगानों के व्यापारियों और किसानों के अधिन थे, सरकार के नियंत्रण में नहीं थे ।

यह तथ्य संकेत करता कि बहुत से किसानों ने अपनी निजी बंजर भूमी प्रबन्धन के लिए के.एफ.सी.एस. को सौंप दी, जो इस योजना की व्यावहारिकता और स्वीकार्यता (विशेषकर भू–मालिकों के बीच) की ओर संकेत करता है ।

यद्यपि के.एफ.सी.एस. का गठन निर्दिष्ट ढंग से किया गया और इन्हें कार्य योजना के साथ पंजीकृत किया गया पर कोई चीज नजरन्दाज हो गई जिसके कारण के.एफ.सी.एस. की अवधारणा कुछ समय बाद गम्भीर, वैधानिक और संवैधानिक परिसीमाओं का शिकार हो गई । यह चूक थी कि बहुत से मामलों में वनों पर नियन्त्रण के परिवर्तन का राजस्व अभिलेखों में इन्दराज नहीं हुआ ।

बेशक के.एफ.सी.एस. के प्रबन्धन में दिए जाने वाले क्षेत्र स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट, सीमाङ्कित और मौके पर परिभाषित थे और सीमाएं स्तम्भों द्वारा प्रदर्शित थी । जब कांगड़ा 1966 में हिमाचल प्रदेश का भाग बन गया, हिमाचल प्रदेश के राज्य क्षेत्र पर लागू भू–राजस्व अधिनियम के अन्तर्गत समस्त बंजर भूमि और वन क्षेत्र वन विभाग में निहित कर दिए गए और वहीं इनके प्रबन्ध के लिए जिम्मेवार भी बन गया । इस तरह से उन वनों पर, जो के.एफ.सी.एस. प्रबन्ध में थे, के.एफ.सी.एस. का स्वामित्वाधिकार व नियन्त्रण अचानक हटा दिया

गया । इसकी कानूनी व्याख्याओं पर भ्रम बना हुआ है यह के.एफ.सी.एस. को पुर्नजीवित करने की प्रक्रिया में बाधा बनी हुई है ।

वन-प्रबन्धन की प्रणालियां

प्रत्येक के.एफ.सी.एस. के लिए कार्य-योजना अधिकारी द्वारा अलग कार्य-योजना तैयार की गई । रावल द्वारा 1967 में सभी के.एफ.सी.एस. के लिए एक समग्र कार्य योजना बनाए जाने (रावल 1968) से पहले- के.एफ.सी. एस. की पृथक-पृथक कार्य-योजनाएं एक संशोधन की अवधि को मिलाकर 10 से 15 वर्ष के लिए होती थी । 1940-50 के दशक में कर्मचारियों की संख्या को देखते हुए एक-एक के.एफ.सी.एस. के लिए पृथक कार्य योजना बनाना एक बड़ी मेहनत का काम था । इसका एक विशेष उदाहरण भगोटला के.एफ.सी.एस. की 1942/43 से 1951/52 की अवधि के लिए बनाई गई कार्ययोजना से मिलता है । योजना में निम्न विषयों जैसे कि अधीनस्थ क्षेत्र, वन उत्पादन का उपयोग, (निकासी के ढंग, उनका मूल्य, कृषि एवं सामाजिक रीतियां, निर्यात रूपरेखा इत्यादि), वन कर्मी एवं मज़दूर संख्या, पिछली और भावी प्रबन्ध प्रणाली, अलग-2 वन प्रभागों या कार्य-वृत्तों सम्बन्धी कार्ययोजना व क्रियान्वयन का विस्तृत विवरण और विविध विनियमन पर दस्तावेज़ तैयार किया जाता था । इसमें के.एफ.सी.एस. के कार्यक्षेत्र की स्थलाकृति का नक्शा (आठ इंच में एक मील मापक्रम से तैयार किया गया) भी शामिल होता था । व्यवहारिक रूप में यह पृथक कार्ययोजनाएं एक आदर्श नमूने के अनुसार बनाई होती थी और उसका मुख्य उद्देश्य अन्धाधुन्ध चरान से जंगल को बचाने के लिए रकबे बन्द करना होता था । विभिन्न योजनाएं सीमित और एक सा नुस्खा विशेष प्रकार की रकबा बन्दी के लिए प्रस्तुत करता है विवरण नीचे दिया गया है ।

चील कार्य-वृत:- यह विधि ऐसे हल्के व खुले चील के वनों में लागू की गई जिनके छत्र उलझे होते, और खड़े पेड़ अलग-2 घनत्व के और जवाने होते । इसके लिए आवरण बनाते हुए चील के जंगलों में से प्रकाश उपलब्ध कराने का काम था, जहां खड़े झुण्ड युवा पेड़ों के होते थे पर उनका घनत्व भिन्न-भिन्न होता था । इस वानिकी पद्धति के अनुसार चराई रोकने के लिए रकबा बन्दी करके वन पुनरूत्पादन को सहायता प्रदान की जाती थी । कुछ अपवादों को छोड़ कर इनमें व्यापारिक स्तर पर कौपिस कटान उपयुक्त नहीं था

एक-प्रजातीय चील वन (के.एफ.सी.एस. मरण्डा भंगियार द्वारा प्रबन्धित) में बिरोजा निकासी

और सीमित कटान के.एफ.सी.एस. के सदस्यों की इमारती लकड़ी की मांग को पूरा करने के लिए किया जाता था ।

ईंधन व चारा कार्य-वृत :- इस कार्य वृत के अन्तर्गत बस्तियों के नज़दीकी चरागाह क्षेत्र लिए गए । इस पद्धति में वह भूमि जिसकी चरान के लिए स्थानीय लोगों को आवश्यकता होती, छोड़ कर शेष भूमि में चारा देने वाले पेड़ स्थानीय महत्व में लगा दिए जाते थे । मौखिक साक्ष्य मिलता है कि चरान के किन भागों को बन्द किया जाए, इस बात को लेकर वन विभाग और गांव वासियों के बीच ठनी रहती और गांव के निवासियों में, रकबे बन्द करने के पक्षधरों और विरोधियों के बीच भी असहमति बनी रहती । नूरपुर तहसील की कुछ के.एफ.सी.एस. को छोड़ कर इस कार्यवृत की सफलता भी नाममात्र थी क्योंकि वनरोपण के पहले पांच वर्षो में इन क्षेत्रों में वह चराई नहीं रोक पाए ।

वनरोपण-कार्य-वृत :- कटान से नंगे हुए और नष्ट प्रायः वन, जिनमें आर्थिक रूप से मूल्यवान वनस्पति न के बराबर होती थी, उन्हें अलग करके

वन-रोपण कार्यवृत बना दिया जाता था । इनमें व्यापारिक प्रजातियों, यथा, चील, खैर, बेहड़ा, हरड़, शीशम, आमला व युकालिप्टस के पेड़ लगाए जाते । चौड़ी पत्ती की प्रजातियों के पौध रोपण में कोपलें ही चरे जाने का भय रहता है इसीलिए बहुत सी के.एफ.सी.एस. के वन क्षेत्रों में, इस खतरे से मुक्त, व्यापारिक प्रजातियों जैसे चील, खैर, युकालिप्टस व शीशम के पेड़ ही लगाए दिखते हैं । नष्ट प्राय: वनों को नये वन रोपण के लिए तैयार करने का जो ढंग अपनाया जाता था, उससे काफी नुकसान होता था और सर्दियों में खरपतवार (झाड़ियां, निकम्मी पौध व गैर-व्यापारी प्रजाति के पौधे) को नष्ट करने के लिए तल पर आग लगाई जाती और फिर सर्दियों की बारिशों और गर्मियों की भीषण गर्मी के लिए अनावृत किया जाता । यह वैज्ञानिक वानिकी का एक और उदाहरण है जो हिमालय और उससे भी अधिक शिवालिक की सुकुमार पारिस्थितिकी को समझने में नाकाम रहा ।

संरक्षण कार्यवृत :- इसके अन्तर्गत के.एफ.सी.एस. के प्रबन्ध में लिए गए क्षेत्रों का सबसे बड़ा भाग आता था । चराई के लिए बन्द कर दिया जाता । यह समस्त क्षेत्र इसमें प्राकृतिक पुनरूत्पादन अधिनियम दिया जाता । कहीं-2 पौधा रोपण भी किया जाता ।पौधा-रोपण आमतौर पर अधिक सफल नहीं रहा, पर धीरे-2 प्राकृतिक वन-पुनरूत्पादन प्रक्रिया बड़े तौर पर सफल रही ।

रावल की एकीकृत (इन्टैग्रेटिड) कार्ययोजना में वर्ष 1968-69 के दौरान बनाई गई पृथक-2 कार्ययोजनाओं को समाविष्ट कर लिया गया । वन विभाग ने के.एफ.सी.एस. के सीमित सहयोग से आम सभा में पारित, पृथक-2 कार्ययोजना के स्थान पर, समस्त क्षेत्र में, एक तरफा परिवर्तन करके एकीकृत कार्ययोजना लागू कर दी । कोई अभिलेख नहीं मिलता जिसमें यह जिक्र हो कि एकीकृत (इन्टैग्रेटिड) कार्ययोजना लागू करने के लिए 70 के.एफ.सी.एस. का सामान्य सभा से, सुझाव मांगे गए हों अथवा सहमति व अनुमोदन प्राप्त किया हो ।

के.एफ.सी.एस. के वनों के प्रकार

1980-90 के दशक के शुरूआत में अर्थात 1981/82 से 1995/96 के लिए बनाई गई कार्य-योजना में कांगड़ा वन वृत के वन विभाग व के.एफ.सी.

एस. द्वारा प्रबन्धित वनों में बढ़ रहे औसत पेड़ (लकड़ी) भण्डार को दर्शाया गया है । (तालिका 6)

तालिका 6: बढ़ रहा औसत पड़ भण्डार कांगड़ा वन-वृत मी.^{3}/हैक्टर		
कटान अनुक्रम	बढ़ रहा औस्त पेड़ (लकड़ी) प्रति है. घन मीटरों में	
	धर्मशाला वन विभाग	देहरा वन विभाग
वन विभाग द्वारा प्रबन्धित वन अनुक्रम 1	132	113
वन विभाग द्वारा प्रबन्धित वन अनुक्रम 2	104	77
के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन अनुक्रम 3	171	93
स्रोत : कांगड़ा वन वृत की 1981/82 से 1995/96 के लिए कार्य योजना		

यह मान कर कि 1940-50 के दशक में जो वन क्षेत्र के. एफ.सी.एस. को प्रबन्धन के लिए दिए गए वह नष्ट प्राय व बंजर थे । उनमें 1970-80 के दशक के अन्त में उपलब्ध लकड़ी भण्डार और उसके मूल्य को देखते हुए स्पष्ट दिखता है कि यह भागीदारी प्रबन्ध की अवधारणा कितनी अधिक सफल थी । विशेषकर इसलिए कि वन विभाग द्वारा प्रबन्धित वन क्षेत्रों की तुलना में उपरोक्त स्थिति बेहतर थी ।

तालिका : 7 वर्ष 1967 में के.एफ.सी.एस. वनों का पूंजी-गत मूल्य				
सम्पदा		क्षेत्रफल है. में	दर रू./है.	मूल्य रू. में
भूमि		23560	1000	23,560,000
बढ़ रहा भण्डार	चील	2060	7000	14,420,000
	बान	250	3000	750,000
	ईन्धन	5970	400	2,388,000
	कौपिस	2160	1000	2,160,000
	बांस	21	1500	31,500
	वन-रोपण	3400	300	1,020,000
	संरक्षण	9700	1000	9,700,000
	वन्य जीव व लकड़ी के अतिरिक्त वन उत्पाद			200,000
कूल				54,229,500

इसकी दूसरी मिसाल के.एफ.सी.एस. शाहपुर में मिलती है । जहां बान (कुर्कस इन्काना) एक चौड़ी पत्ती के पेड़ों का वन बहुत अच्छी अवस्था में है और इतनी कम ऊंचाई वाले

कांगड़ा जिला के क्षेत्रों में इस प्रजाति के फलते फूलते वन का एकमात्र उदाहरण है ।

वर्ष 1967 में वन विभाग ने आकलन किया कि के.एफ.सी.एस. के अधीन वनों का मूल्य 5,42,29,500/- रूपये था । इसका वर्गवार विवरण तालिका 7 में दिया गया
है ।

उपरोक्त साक्ष्य, के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणी द्वारा लिए गए इस मोरचे का समर्थन करता है कि कुछ मृत-प्राय या बन्द सभाओं को छोड़ कर कुल मिला कर के.एफ.सी.एस. ने वन विभाग की तुलना में वनों का प्रबन्ध अच्छे ढंग से किया है । इस अनुभव के आधार पर वन विभाग भी अनधिकारिक तौर पर इस राय से सहमत है कि वनों पर लोगों का नियन्त्रण - लोगों की वनों से पूरी होने वाली जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है । वन विभाग की वर्तमान कार्य-शैली की वन सभाओं द्वारा अलोचना की जाती है । उदाहरण के लिए चील के पेड़ों पर बनाई गई नालिकाओं में बिरोज़े का बहाव बढ़ाने के लिए, तेज़ाब का अधिक प्रयोग करते हैं, जिससे पेड़ घोर तूफान के दौरान तड़क कर टूट जाते हैं और के.एफ.सी.एस. के वनों में परिपक्व अवस्था को पंहुचे पेड़ों को हानि पहुंचाते हैं ।

वन-अपराध

एक विस्तृत अधिसूचना[20] में साफ तौर पर कहा गया है, "कि इस बात को पूरे तौर पर स्पष्ट किया जाए कि बुनियादी तौर पर सभाएं व उनके कर्मचारी - वनों के संरक्षण के लिए उत्तरदायी हैं और यह कर्त्तव्य भार विशेषकर राखा और के.एफ.सी.एस. के वन अधिकारी पर आन पड़ता है ।" वन मण्डल अधिकारी व वन विभाग के कर्मचारियों का जिम्मा के.एफ.सी.एस. कर्मचारियों को मार्गदर्शन देने का था । वन अपराध क्या है ? उसे कैसे अभिलिखित करना है ? और के.एफ.सी.एस. के कर्मचारियों की शक्तियां क्या हैं ? इन सब पर विस्तृत और निश्चित परिभाषाएं गढ़ी गई । जब वन अपराध के.एफ.सी.एस. का ही सदस्य होता तो वन राखा या वन अधिकारी को शक्तियां प्राप्त थीं कि वह नुकसान की रिपोर्ट दर्ज करे, औजार जब्त करे, वन

उत्पादन जो चुराया गया है उसे भी जब्त करे और वन अपराधी को धर ले व गिरफ्तार करे ।

के.एफ.सी.एस. भगोटला का नक्शा जिसमें कार्ययोजना दस्तावेज शामिल है । इससें स्पष्ट रूप से विभिन्न, भूमि की किस्में उसका प्रबन्ध प्रणालियों का वर्णन है ।

जहां वन-अपराधी गैर सदस्य हो तो एक सप्ताह के भीतर दोषी और गवाहों के ब्यान और अपराध समायोजित करने के लिए प्रार्थना पत्र रेंज अफसर को भेजना आवश्यक था । यदि के. एफ.सी.एस. किसी वन अपराधी पर मुकद्मा चलाना चाहती हो तो मामला वन मण्डल अधिकारी को ऐसा करने के लिए भेजा जाता था । इस तरह जहां वन अपराधी पकड़ने का काम के.एफ. सी.एस. का होता था, वन मण्डल अधिकारी भारतीय वन अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त शक्यिों का प्रयोग करते हुए दण्डात्मक कार्यवाही करता था।

वन अधिकारी और राखा की के.एफ.सी.एस. के वनों से समीपता तथा उनका गांवों के लोगों अथवा स्थलाकृति से भली-भान्ति परिचय यह सुनिश्चित करता और शायद ही कोई अपराध उनकी नजर से छुप पाता । इससे उनके देखरेख कार्य में अधिक कुशलता आती थी, जिसकी अपेक्षा वन विभाग के गार्ड से नहीं की जा सकती थी क्योंकि उसे सैकड़ों हैक्टयर वन की देखभाल करनी पड़ती थी । यह पद्धति केवल वहां असफल रहती-जहां वन अधिकारियों द्वारा

राखा पर ठीक से निगरानी नहीं रखी जाती और व अपराधियों के साथ मिल कर अपराध छुपाने में स्वतन्त्र रहते ।

अपराध दर्ज करने के लिए तथापि नियम व प्रक्रियाएं विस्तृत व जटिल थे । 1940-50 के दशक में जब वन अधिकारी व राखे विशेषकर उर्दू नहीं जानते थे, के.एफ.सी.एस. कर्मचारियों को अपराधों के लिए सज़ा प्रक्रिया को लागू करना अति कठिन रहा होगा । जटिल प्रक्रियाओं के कारण सभी अपराधियों को लताड़ना और पक्के व बड़े अपराधियों पर वन मण्डल अधिकारी के माध्यम से मुकद्मा चलाना कठिन काम था, विशेषकर इसलिए कि वन अधिकारियों व राखाओं को लिखित प्रक्रियाओं के जानकार बनाने के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था । इसके अतिरिक्त वन विभाग में, के.एफ.सी.एस. के पूरे कार्यकाल में वन अधिकारियों व राखाओं को कानूनी तौर पर अपराधियों को दण्डित करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित शक्तियां देने के विषय में भ्रान्ति का वातावरण बना रहा । उन्हें वन अधिकारी अधिसूचित किया तो जाता पर उन्हें दी गई शक्तियों को बार-बार वापिस ले लिया जाता था । ऐसा होने से अपराधियों को, लोगों द्वारा वन प्रबन्धन का क्रियान्वयन और देख रेख करने के कानूनी अधिकार पर प्रश्न चिन्ह लगाने का अवसर मिल गया ।

वर्तमान समय में वन विभाग के.एफ.सी.एस. के कर्मचारियों द्वारा वन अपराधों को पकड़ने व उन पर दण्ड प्रक्रिया लागू करने के अधिकार को मान्यता नहीं देता है । जिसका सीधा परिणाम, क्षेत्र में - अव्यवस्था होता है । अब भी वन विभाग के अलावा के.एफ.सी.एस. के कर्मचारी भी अपराधों को पकड़ते हैं एवं नुकसान का विवरण देने, और दण्ड राशि वसूल करने का काम कर रहे हैं । इस प्रकार के व्यवहार से पक्के अपराधियों को या संगठित लकड़ी तस्करों को भ्रष्ट वन अधिकारियों अथवा के.एफ.सी.एस. कर्मचारियों से मिली भगत करके वनों को नुकसान पहुंचाने में सुविधा मिलती है । जब कोई अपराध दर्ज किया जाता है तो वन विभाग के.एफ.सी.एस. को और के.एफ.सी. एस., वन विभाग को अपराधी होने के लिए दोषी ठहराते हैं । एक गम्भीर अपराध के मामले में वन मण्डल अधिकारी को के.एफ.सी.एस. कुशमल के रजिस्टर व परमिट बुक जब्त करने पड़े । बहुत से उदाहरण मिलते हैं जहां वन विभाग ने के.एफ.सी.एस. द्वारा वन अपराधियों से पकड़े गए वन उत्पाद विशेष

कर लकड़ी जब्त कर नीलाम किये और कहीं के.एफ.सी.एस. द्वारा गिरे हुए सूखे पेड़ नीलाम किए गए[21] । वन विभाग का दावा यह है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा अपने सदस्यों को कीमती और अवैध रूप से काटी गई लकड़ी देने के लिए नीलामी का मात्र एक ढंग अपनाया गया है[22] उनका यह भी कहना है कि इस तरीके से लकड़ी के अवैध कटान को प्रोत्साहन मिलता है और के.एफ.सी. एस. पर अपने सदस्यों को लकड़ी की स्वीकृति देने पर लगाए गए प्रतिबन्ध दरकिनार करने का अवसर मिलता है ।

बहुत सी कार्यशील के.एफ.सी.एस. की वन अपराधियों को पकड़ कर दण्डित करने व जुर्माना वसूली से आय 1500/- रूपये से 2000/- रूपये तक है ।

के.एफ.सी.एस. मरण्डा भंगियार के राखे-सचिव अनंत कुमार (आग दाएं) के साथ

इमारती लकड़ी का वितरण

पहले इमारती लकड़ी का बर्तनदारों को, वितरण के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणी की सिफारिश पर किया जाता, बेशक तकनीकी तौर पर वन मण्डल अधिकारी ही निर्णायक प्राधिकृत अधिकारी होता था, जो स्वीकृति दे सकता था । के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणी के सदस्यों का कहना है कि वे पहले

प्रार्थी की आवश्यकता को जांचते है फिर वन में खड़े पेड़ों की वास्तविक उपलब्धता को आंकते हैं और तभी किसी सदस्यों को लकड़ी स्वीकृत करने की सिफारिश करते हैं । यदि कोई सदस्य जंगलों में लगी आग को बुझाने के काम में सहयोग नहीं देता तो उसकी प्रार्थना पर सिफारिश करने के लिए इन्कार कर देते थे । राखा और के.एफ.सी.एस. वनाधिकारी वन विभाग के एक कर्मचारी के साथ वन में जाते, उसमें परिपक्व अवस्था के पेड़ को छांट कर हैमर से अंकित कर देते । अतिरिक्त के.एफ.सी.एस. के उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा की गई जांच से वन विभागीय या के.एफ.सी.एस. कर्मचारियों द्वारा अपरिपक्व पेड़ को देने अथवा प्रार्थियों से भेदभाव करने के प्रयास विफल हो जाते थे ।

वर्ष 1973 से के.एफ.सी.एस. कर्मचारियों व वन विभाग के कर्मचारियों के कर्तव्यों, अधिकारों, व जिम्मेदारियों का परस्पर टकराहट होता रहा और वन विभाग ने लकड़ी वितरण के लिए प्रार्थी चयन करने की प्रक्रिया में, बड़े स्तर पर के.एफ.सी.एस. की उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी । बहुत सी के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणियों ने लकड़ी वितरण के लिए, सदस्यों के आग्रह पर, सिफारिश करना जारी रखा है पर कोई भी नियम वन मण्डल अधिकारी को उनकी सिफारिशें मानने के लिए बाध्य नहीं करता । वन मण्डल अधिकारी की कार्य शैली ही यह निर्धारित करती है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा की गई सिफारिशों को माना जाएगा या नहीं । इसका अर्थ हो सकता है कि, यद्यपि वनों के प्रबन्ध और संरक्षण के लिए के.एफ.सी.एस. को ग्राम समुदायों का समर्थन प्राप्त है, उन्हें वन विभाग द्वारा सूचित नहीं किया जाता अर्थात उन्हें ज्ञान नहीं होता कि उनके वन में कोई पेड़ क्यों काटा जा रहा है । क्या वह पेड़ लकड़ी वितरण के अन्तर्गत स्वीकृत हुआ है या वन रक्षक (गार्ड) की मिली भगत से अवैध रूप से काटा जा रहा है ?

ऐसी ही भ्रान्ति, के.एफ.सी.एस. द्वारा किसी सदस्य के परिवार जन की मृत्यु पर, किसी अन्य गमी या खुशी के अवसर पर और विवाह इत्यादि पर, लकड़ी की तत्काल आवश्यकता को पूरा करने के लिए छोटे सूखे पेड़ स्वीकृत करने की प्रथा पर, बनी हुई है । बहुत सी के.एफ.सी.एस. अब, अच्छी ईंधन की लकड़ी वाले पेड़ों के स्थान पर उपरोक्त अवसरों पर सूखे झाड़ी नुमा पेड़ों

को स्वीकृत करती हैं परन्तु वन विभाग इस पर भी आपत्ति करता है (जैसा कि के.एफ.सी.एस. शाहपुर में हुआ) ।

उत्तरदायित्व व सहयोग के मामलों में अस्पष्ट स्थिति का, महा-अनर्थकारी प्रभाव हुआ है । 1973 से लेकर के.एफ.सी.एस. की सम्पदा को लूटा गया है । सूचनाएं मिली है कि के.एफ.सी.एस. से लकड़ी की तस्करी के लिए ऊंटों और टैक्सियों का प्रयोग किया गया है और वन विभाग व के.एफ.सी.एस. के नेक व ईमानदार कर्मचारी भी इस तस्करी को रोक नहीं पाए हैं । ग्राम समुदाय अपने जंगलों में लगने वाली आग को बुझाने के काम में कम रूचि लेने लगे हैं । इस प्रकार की लकड़ी की तस्करी के सतत् प्रवाह से उत्साहित हुए कुछ प्रभावशाली ग्राम वासियों ने के.एफ.सी.एस. के वनों पर अवैध कब्जे कर लिए हैं । जब कुछ के.एफ.सी.एस. ने इसकी वन मण्डल अधिकारी से शिकायत की (के.एफ.सी.एस. भगोटला) तो दल भेजकर पुर्नसीमाङ्कन करवा कर अवैध कब्जे अंकित कर दिए गए पर उन कब्जों को हटाने का कोई प्रयास नहीं किया गया ।

इसी प्रकार कुछ के.एफ.सी.एस. द्वारा असीमाङ्कित संरक्षित वनों के भागों को सरकार को गांव में लोकोपयागी भवन बनाने के लिए (स्कूल, डिस्पैन्सरी इत्यादि के लिए) आबंटित किया है जिसे वन विभाग ने अवैध कब्ज़े मानकर उन भवनों को हटाने का, के.एफ.सी.एस. को आग्रह किया है ।

मरण्डा भंगियार के.एफ.सी.एस. की बैठक (बर्तनदारों को भवन निर्माण अथवा मुरम्मत के लिए) लकड़ी-वितरण के लिए जो 2001 में की गई इसमें महिला मण्डल प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित किया गया - क्योंकि महिलाएं के.एफ.सी.एस. की सदस्याएं हैं ।

5

प्रबन्धकीय दावेदार संस्थाओं के बीच अलगाव प्रवृति

स्पष्ट रूप से के.एफ.सी.एस. की वर्तमान स्थिति, भूमिका और भविष्य के बारे में काफी भ्रान्ति बनी हुई है । एक तरफ, के.एफ.सी.एस. जैसी पहल का 1971 में कुछ लोग अन्त हुआ मानते हैं, जब हिमाचल प्रदेश का पुनर्गठन हुआ, और इन्हें दिया जाने वाला सहायक अनुदान बन्द कर दिया गया । दूसरी और बहुत सी के.एफ.सी.एस., विरोधी स्थिति की परवाह किए बिना काम किए जा रही है । कड़ी कानूनी दृष्टि से देखा जाए तो सहकारी सभाओं का वैध अस्तित्व बना हुआ है । परन्तु उनकी वास्तविक स्थिति उलझावपूर्ण है, क्योंकि कई क्षेत्रों में वन सहकारी सभाएं वन विभाग से मिलकर उनके अधीनस्थ वनों का प्रबन्धन कर रही हैं और कई क्षेत्रों में वह वन प्रबन्ध में कोई भी सक्रिय भूमिका नहीं निभा रहीं । हल ढूढ़ने से पहले, प्रत्येक दावेदार संस्था द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाएं और उन द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों का, एक विश्लेषण नीचे दिया गया है । लेखक द्वारा वर्तमान स्थिति पर की गई टिप्पणियां तालिका न. 3 में दी गई हैं ।

राज्य सरकारों की भूमिका

पंजाब सरकार (1937 से 1966 तक)

बहुत पहले अर्थात् वर्ष 1955 में भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राजनैतिक तन्त्र में के.एफ.सी.एस. के यथावत कार्यरत रहने के बारे में संदेह व्याप्त था । जुलाई 1, 1955, को पंजाब के मुख्यमन्त्री भीमसेन सच्चर ने निन्मलिखित टिप्पणियां की ।[23]

1. के.एफ.सी.एस. योजना मात्र 73 सहकारी सभाओं तक फैल पाई, जिनके अन्तर्गत कांगड़ा की कुल 6,00,000 एकड़ भूमि में मात्र 60,000 एकड़ भूमि आई । यह बड़ी असंतोषजनक प्रगति थी और उनका मत था कि प्रगति कम होने का कारण के.एफ.सी.एस. को दिए जाने वाले सहायक अनुदान की सीमा 50,000/- रूपये निर्धारण करना था ।

2. सहायक अनुदान की सीमा बढ़ाने से पहले, इस योजना का निम्न सिद्धान्तों के अनुसार संशोधन करना चाहिए :-

(क) वन सहकारी सभाओं को समाप्त करके वनों का प्रबन्ध पंचायतो के हाथ में दे देना चाहिए । सहकारी सभाओं का आधार विस्तृत नहीं था क्योंकि इसकी सदस्यता खेवटदारों तक ही सीमित थी और उनका भी पूरा प्रतिनिधित्व नहीं होता था । यह सिद्धान्त कि गांव के संसाधनों से होने वाला लाभ गांव के सभी बरतनदारों के बजाए केवल सीमित समुदाय को मिले, गलत था । दूसरे, लाभ का वितरण व्यक्तियों को उनके लाभांश के रूप में करना भी गलत था । तीसरे, पंचायतों को विकसित करना, सरकार का प्रकट उत्तरदायित्व था, जो सारे क्षेत्र के लिए गठित हुई थी, इसलिए उनसे ही यह काम लिया जाना उचित था ।

(ख) यदि यह योजना सारे वन क्षेत्र में लागू नहीं हो सकती तो इसे त्याग देना चाहिए । इस योजना के अन्तर्गत केवल 73 गांवों को, जिनमें के. एफ.सी.एस. थी, विशेष सहायक अनुदान दिया जाना सरकार द्वारा उन्हें अनुचित व्यवहारिक अधिमान दिया जाने जैसा था क्योंकि यह अनुदान अन्य 513 गांवों को नहीं मिलता था ।

(ग) के.एफ.सी.एस. के अधिकार क्षेत्र से आरक्षित वनों को निकाल देना चाहिए क्योंकि के.एफ.सी.एस. का कार्य व लक्ष्य असीमाङ्कित संरक्षित वनों के विकास का था ।

उपरोक्त अवधारणाओं और सरकार की इस योजना के निरन्तर वित्तीय सहायता दिए जाने की चिन्ता के आधार पर - श्री सच्चर ने वन विभाग को एक व्यापक योजना बनाने के लिए कहा । कोई भी ऐसे अभिलेख नहीं मिलते

हैं, कि उपरोक्त आग्रह के अनुसार ऐसा किया गया अथवा समस्त जिला के वन क्षेत्रों के लिए कोई संशोधित योजना बनाई और प्रस्तावित की गई । बल्कि हमीरपुर तहसील में गठित की गई दो के.एफ.सी.एस. को 1955-56 में विभाग द्वारा त्याग दिया गया, जबकि वह मात्र अधिसूचना जारी होने की प्रतीक्षा में थी, कि इस तरह वह कभी अस्तित्व में नहीं आई । वर्ष 1955 के इस प्रसंग से ही लगता है राजनैतिक इच्छा-शक्ति व समर्थन, के.एफ.सी.एस. योजना से हटा लेने की शुरूआत हो गई । इससे साफतौर पर प्रकट होता है कि वन विभाग के.एफ.सी.एस. योजना के प्रयोग के लक्ष्यों और साध्यों के बारे में अथवा इसकी उपलब्धियों और प्रमाणित शक्तियों के बारे में मुख्यमन्त्री को कायल न कर सका और इसी कारण इस योजना को चालू रखने के लिए राजनैतिक प्रश्रय व समर्थन प्राप्त करने में भी असफल रहा । सरकार ने के.एफ.सी.एस. योजना का आगामी विस्तार के.एफ.सी.एस. से बिना विचार विमर्श अथवा वार्ता किए न करने का निर्णय लिया । लेखक के विचार से यह राजनैतिक सूझबूझ और सरकारी समर्थन दोनों के अभाव को प्रदर्शित करता है । इस सब के बावजूद के.एफ.सी.एस. योजना चलती रही और वर्ष 1961 में और स्वायत्त बन गई क्योंकि अब के.एफ.सी.एस. को सहायक अनुदान के स्थान पर राजस्व वापिस मिलने लगा था ।

हिमाचल व हिमाचल प्रदेश सरकार (वर्ष 1967-1997 तक)

1966 में जब पंजाब का पुनर्गठन हुआ तो कांगड़ा हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित किया गया । हिमाचल प्रदेश जनवरी 1971 में भारतीय गणतन्त्र का पूर्णराज्य घोषित हुआ । दो तत्वों की के.एफ.सी.एस. के भविष्य बारे विरोधी भूमिका रही इनमें से पहला था - राज्य की नई राजनैतिक व्यवस्था का के.एफ.सी.एस. जैसी पहल के बारे में अनुभव और जानकारी का अभाव । कुछ पहलुओं की दृष्टि से, हिमाचल के नये और पुराने क्षेत्रों के बीच का टकराव ही के.एफ.सी.एस. की दुर्दशा का कारण बना । कुछ लोगों का कहना है तत्कालीन हिमाचल सरकार जिसमें पुराने हिमाचल के क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व अधिक था वह के.एफ.सी.एस. जैसी पहल के लिए धन उपलब्ध कराने व उसका समर्थन करने के पक्ष में नहीं थी । के.एफ.सी.एस. के वनों में पेड़ों की शक्ल में इमारती

लकड़ी में वन-ठेकेदारों का निहित स्वार्थ था, के.एफ.सी.एस. के लिए राजनैतिक समर्थन घटाने में उनका भी हाथ कहा जाता है[24] ।

नये हिमाचल राज्य को पंजाब से सहभागी वन प्रबन्धन का एक अद्वितीय संस्थागत ढांचा विरासत में मिला । अब उसके पास, लोगों द्वारा वन-प्रबन्धन पर संवेदनात्मक ढंग से दृष्टि डालने और समस्त पहाड़ी क्षेत्र के लिए टिकाऊ एवं व्यवहारिक प्रदर्शन का नमूना तैयार करने का सुनहरा अवसर था ।

कारण कुछ भी हो, वन विभाग ने ऐसा करने के बजाए, के.एफ.सी.एस. पर नियन्त्रण के अधिकार को पाने के बाद, इस सामुदायिक वन प्रबन्धन की पहल पर घातक प्रहार किये । तदपि अगले कुछ वर्षो में वन सहकारी सभाओं को पुनर्जीवित करने और उन पर एक नवीन दृष्टि डालने के विभिन्न प्रयास किए गए । वर्ष 1980 में वन मन्त्री ने के.एफ.सी.एस. को नये सिरे से वित्तीय सहायता देने के विषय पर सिफारिशें करने के लिए एक कमेटी[25] का गठन किया । 1981 में उक्त कमेटी ने सिफारिश की कि के.एफ.सी.एस. को पूर्व-वत काम करने की आज्ञा दी जाए । यह मामला विधान सभा में उठाया गया और उसकी अगली बैठक में वनमन्त्री ने के.एफ.सी.एस. को वित्तीय सहायता 1982 से आगे बहाल करने की सिफारिशों को अनुमोदित कर दिया । इन प्रभावशाली कथनों का कोई परिणाम न निकला । हिमाचल सरकार ने वर्ष 1990 में के.एफ.सी.एस. के पुनर्व्यवस्थापन[26] के लिए जांच-पड़ताल करने के लिए एक और कमेटी गठित की परन्तु उन्हीं दिनों विधान सभा का अवसान हो गया और कमेटी अपना कार्य पूर्ण न कर सकी । फिर 1993 में पंजीकार (सहकारी सभाएं) द्वारा किए गए निर्देशों के अनुसार, सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) ने के.एफ.सी.एस. के पांच प्रतिनिधियों की प्रदेश स्तरीय कमेटी के.एफ.सी.एस. के पुनर्व्यवस्थापन के लिए गठित की । हांलाकि इस कमेटी की औपचारिक बैठक अभी बुलाई जानी है ।

वन-विभाग की भूमिका

वन-विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. को समर्थन देने की पहल में निभाई गई भूमिका को चार अवस्थाओं में बांटा जा सकता है ।

अवस्था 1 : 1940/1 से 1954/5

वन-विभाग ने के.एफ.सी.एस. योजना को आरम्भ करते समय एक अनोखी और भिन्न विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया, जो पुरानी और उस समय प्रचलित वन-संरक्षण प्रणाली से काफी हट कर थी । अलग वित्तीय और तकनीकी आंबटन किए गए और उनका कड़ाई से क्रियान्वयन करने एवं के.एफ. सी.एस. के समर्थन व सहायता के लिए स्वतन्त्र संस्थागत ढांचा खड़ा किया गया। अवधारणा पूरक सोच से लगा कि इस पहल ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति की है और इसलिए 1955 के आरम्भ में यह सिफारिश की गई कि इस योजना को हमीरपुर व नूरपुर तहसीलों तक फैलाया जाए

अवस्था 2 : 1955/6 से 1966/7 तक

1955 के बाद पंजाब सरकार से मिलने वाली इस योजना के लिए सहायता में एक दम गिरावट आ गई और इसे उपलब्ध वित्तीय प्रावधान भी घटा दिए गए । 1966 में पंजाब राज्य के पुनर्गठन के समय कांगड़ा हिमाचल का भाग बन गया, इसके साथ ही उक्त परिवर्तन और भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा ।

अवस्था 3 : 1967/8 से 1972/3 तक

आरम्भ में थोड़ी-बहुत स्वायत्तता जो के.एफ.सी.एस. को कार्य करने में उपलब्ध थी वह आर.डी. रावल द्वारा तैयार की गई केन्द्रीकृत एकीकृत कार्य योजना को लागू करके और घटा दी गई - यह कार्य योजना 1968 में प्रकाशित हुई और 1985 तक प्रभावी रही । इस काल तक के.एफ.सी.एस. की पहल का मौलिक आधार दुर्बल किया जा चुका था और वन विभाग की सहकारी सभाओं द्वारा वन प्रबन्धन करवाने में रूचि निरन्तर घटती जा रही थी। वास्तव में वन विभाग ने, इसके बावजूद कि प्रत्येक के.एफ.सी.एस. को अपने वन प्रबन्ध की कार्य योजना को अनुमोदित करने में स्वायत्तता लिखित रूप में प्राप्त थी, वन प्रबन्धन का अधिकार अपने में निहित कर लिया । लेखक के विचार में वन विभाग, के.एफ.सी.एस. द्वारा कड़ी मेहनत द्वारा सफलतापूर्वक उगाए वनों से होने वाले लाभ पर पुनः नियन्त्रण प्राप्त करने में दिलचस्पी रखता था ।

वर्ष 1971 में जब कांगड़ा हिमाचल का भाग बन चुका था, के.एफ.सी. एस. प्रयोग नये हिमाचल के वन विभाग के पास पहुंच गया । के.एफ.सी.एस. योजना आरम्भ में 1971 से आगे स्वीकृत नहीं की गई और एक वर्ष तक इसकी नींव व आधार पर ही प्रश्न उठते रहे । हिमाचल सरकार के.एफ.सी.एस. के दबाव में आ गई और उसने वन विभाग को पीछे करते हुए अधिसूचना[27] द्वारा सभाओं का कार्यकाल दो वर्ष के लिए पूर्व शर्तों पर बढ़ा दिया । दूसरा इससे जाहिर था कि के.एफ.सी.एस. को सहायक अनुदान 1972 व 1973 के लिए दिया जाना था । पर वास्तव में यह वित्तीय सहायता उन्हें 1980 तक उपलब्ध न हुई । वन विभाग ने वर्ष 1973 में कांगड़ा जिला के हिमाचल में विलय के अधिनियम में एक कानूनी रास्ता पाकर के.एफ.सी.एस. योजना को पुनः अधिसूचित करने से इन्कार कर दिया । ऐसा होने से, के.एफ.सी.एस. की भूमिका और इसकी कानूनी स्थिति के बारे में अनिश्चितता पूरे तौर पर दिखने लगी क्योंकि यह सहकारी सभाएं थीं और इन्हें पंजीकृत किया जाता था । अब वन-विभाग और के.एफ.सी.एस. दोनों के विवादित वन-भूमि पर अपने-2 अधिकारों के बारे में सीधे तौर पर विरोधी विचार थे । इसका स्पष्ट उदाहरण के.एफ.सी.एस. गहीन लगोड़ में हुई एक घटना में मिलता है (देखें तालिका 2)

"मरण्डा भंगियार के एक वन भाग में भारी भूक्षरण का स्तर" बहुत वर्षों तक के.एफ.सी.एस. के सदस्य यहां पौधे लगाना चाहते थे पर इस कारण न लगा सके क्योंकि वन विभाग उन्हें कानूनी तौर पर मान्यता नहीं देता था ।

तालिका सं. 2: गहीन लगोड़ वन सहकारी सभा का एक किस्सा

गांव के बूढ़े व्यक्ति, इस किस्से को सुनाते थे, उनकी नज़र भले ही कमज़ोर हो गई हो पर स्मृति ठीक थी । किस्सा उन दिनों का है, जब वन-मण्डल अधिकारी सामने दिखने वाले पूरे क्षेत्र के राजा होते थे । उन दिनों वन-सहकारी सभाएं अभी गठित ही हुई थीं और उन्होंने लोगों की संस्था के रूप में कार्य करना शुरू किया था । मुझे इस किस्से की सच्चाई को सत्यापित करने का कोई रास्ता नहीं दिखता पर यह कहानी सुनाने योग्य है।

एक वन मण्डल अधिकारी जो नया-नया नूरपुर वन मण्डल में नियुक्त हुआ था उसको एक वन रक्षक मिला, जिसकी बेटी की शादी होने वाली थी । उसने साहिब से एक सूखा पेड़, उत्सव में ईंधन की जरूरत पूरी करने के लिए, स्वीकृत करने की प्रार्थना की । उन दिनों की प्रचलित प्रथा के अनुसार वन मण्डल अधिकारी ने तत्काल एक सूखे पेड़ की स्वीकृति दे दी । वन विभाग कर्मचारियों ने गहीन लगोड़ वन सहकारी सभा के जंगल में जाकर एक उपयुक्त पेड़ अंकित किया और उसे काट गिराया ।

के.एफ.सी.एस. के प्रधान इस धोखे से विस्मित होकर इसे सभा का अपमान समझा क्योंकि वन-मण्डल अधिकारी को इस प्रकार की कार्यवाही करने से पहले सभा की सहमति आवश्यक थी । वह सभा के वन अधिकारियों के साथ मौके पर पहुंच गया और वन विभाग के कर्मचारियों से औज़ार छीन लिए, सम्बन्धित वन रक्षक के विरूद्ध नुकसान की रपट दर्ज करा दी ।

वन मण्डल अधिकारी सभा के इस अखड़पन से नाराज हो गया और उसने महसूस किया कि उसकी शक्तियों को चुनौती दी गई है । उसने पुलिस में सभा के प्रधान के विरूद्ध शिकायत दर्ज करवा दी जिसमें उस पर अपने कर्तव्य को निभाने में व्यस्त वन विभाग के कर्मचारियों के उत्पीड़न का आरोप लगाया । जब पूछताछ शुरू हुई तो यह प्रश्न खड़ा हुआ कि वनों सम्बन्धी शक्तियां जो वन मण्डल अधिकारी का निर्द्वद्ध अधिकार था, वह लोगों की सभा को दी कैसे जा सकती थी । कार्यकारिणी ने सफाई देने का प्रयास किया पर उसे नकार दिया गया, तब कार्यकारिणी ने अपने अभिलेखों में वह अधिसूचनाएं तलाश की जिनके अन्तर्गत के.एफ.सी.एस. का गठन किया गया था और उन्हें शक्तियां प्रदान की गई थी । अभिलेखों में कुछ न मिलने पर उन्होंने वन विभाग व सहकारिता विभाग के नूरपुर में नियुक्त कर्मचारियों से उन दस्तावेजों की प्रतियां मांगी जो उपलब्ध हो गए थे । उस समय फोटो-कॉपिग मशीनें नहीं होती थीं । अत: उन दस्तावेजों के फोटो लिए गए और उन्हें पुलिस स्टेशन में साक्ष्य के तौर पर पेश किया गया ।

के.एफ.सी.एस. के प्रधान व सदस्यों ने धर्मशाला से आए साहिबों से उनकी मदद करने का निवेदन किया पर सब व्यर्थ रहा । सभा के प्रधान ने अपने को सरकार के व्यवहार से ठगा सा अनुभव किया - क्योंकि एक तरफ तो सरकार ने के.एफ.सी.एस. का गठन किया और उसके लिए एक भूमिका निर्धारित की और दूसरी ओर - के.एफ.सी.एस. योजना की अवधारणा का सम्मान न करते हुए, अपने ही विभागों पर शर्तों को लागू नहीं

किया । प्रधान ने वन मण्डल अधिकारी के विरूद्ध मानहानि का दावा दायर कर दिया किन्तु सहकारिता विभाग के हस्तक्षेप से उसे मुकद्दमा त्याग देने के लिए राज़ी कर लिया गया ।

मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ क्योंकि सम्बन्धित वन मण्डल अधिकारी कांगड़ा जिला का अरण्यपाल बन गया । वह उन निर्माणधीन कार्ययोजनाओं का भी प्रभारी था जो के.एफ.सी.एस. की भूमिका से सम्बन्धित थी । वह अपना अपमान नहीं भूला था – जबकि एकमात्र सभा ने वन विभाग के अधिकारी को कार्यवाही के लिए चुनौती दे दी थी । इस महत्वपूर्ण पद पर आसीन हो कर के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन और शामलात भूमि को उसने एक बार फिर वन विभाग में निहित कर दिया (यद्यपि तकनीकी तौर पर वे नहीं थे) और वन विभाग को यह कहने के लिए सक्षम कर दिया कि अब क्योंकि वन और शामलात भूमि के.एफ.सी.एस. के पास नहीं उन्हें सहायक अनुदान देना आवश्यक नहीं । उस समय से वन विभाग तकनीकी बहाने प्रयोग करके यह सुनिश्चित करता रहा कि 1973 के बाद के.एफ.सी.एस. को सहायक अनुदान न मिल पाए । के.एफ.सी.एस. को इस तरह असहाय बना कर छोड़ दिया गया ।

अवस्था 4 : 1973/74 से 2000/01

इस दौरान गैर इमारती लकड़ी वन उत्पादों का राष्ट्रीयकरण हो गया और कानूनी तौर पर वन प्रबन्धन राज्य ने अपने हाथ में ले लिया जिसमें इमारती लकड़ी के लिए पेड़ काटना भी शामिल था । इससे वन विभाग को बिना कोई कारण बताए, काटी गई इमारती लकड़ी से प्राप्त राजस्व में से जमीदारी हिस्सा खेवटदारों को देने का अनुबन्ध समाप्त करने का बहना मिल गया । इस तरह कुछ ही वर्षों में, सफलतापूर्वक उजड़े वनों को पुनर्जीवित करने के बाद, के.एफ.सी.एस. ने न केवल अपना वन प्रबन्धन का अधिकार और वन विभाग से मिलने वाली तकनीकी एवं अन्य प्रकार की सहायता खोई बल्कि सहायक अनुदान व जमींदारी हिस्सा जो इनका मुख्य आय साधन था, भी खो दिया । इस क्षेत्र में पेड़ों को कटान के योग्य होने के लिए 30 से 40 वर्ष लगते हैं । के.एफ.सी.एस. ने उजड़ी वन भूमि अपने प्रबन्ध में लेने के 30 वर्ष बाद वनों पर अपना अधिकार खो दिया अथवा यह ऐसे समय पर हुआ जब दशकों तक के.एफ.सी.एस. द्वारा किए गए संरक्षण, वन रोपण और नियन्त्रित निकासी से यह वन पुनर्व्यवस्थित हो चुके थे और अपनी भरपूर क्षमता को पहुंच चुके थे ।

बावजूद पेचीदा-अन्तर्संस्था-सम्बन्धों के, के.एफ.सी.एस. को दी जाने वाली विविध प्रकार की समर्थन सहायता का, सूत्रपात करने, क्रियान्वयन करने, तकनीकी सहायता करने और के.एफ.सी.एस. को आगे बढ़ाने की मुख्य-जिम्मेंवारी, वन विभाग की थी । 1973 के पश्चात वन-विभाग ने 70 के.एफ.सी.एस. के अस्तित्व और उनके प्रति अपने उत्तरदायित्व की अवहेलना कर दी ।

1980-90 के दशक के आरम्भ में कुछ वन-मण्डल-अधिकारियों ने कुछ सभाओं (जैसे भगोटला) को रावल-कार्य-योजना के अनुसार-गतिविधियों के क्रियान्वयन कर काम सौंपा, विशेषकर आबंटित क्षेत्रों में, वन-रोपण और उसका संरक्षण । अन्य वन मण्डलों में के.एफ.सी.एस. को काम में सम्मिलित नहीं किया गया । बाद में वन विभाग ने के.एफ.सी.एस. के लिए बनाई गई पृथक-एकीकृत कार्य-योजना को अमान्य कर दिया और के.एफ.सी.एस. के वनों को राज-क्षेत्रीय-वन-मण्डलों की कार्ययोजना में शामिल कर लिया व इस पग को उठाने के लिए के.एफ.सी.एस. की राय तक नहीं ली । वन विभाग द्वारा ऐसा रूख अपनाने के कारण तालिका 3 में दिए गए हैं ।

के.एफ.सी.एस. उनकी वन प्रबन्धन और संरक्षण की योग्यता पर वन-विभाग के विश्वास न रहने की स्थिति से के.एफ.सी.एस. को समन्वय करने में बहुत कठिनाई सामने आई, फिर भी बहुत सी के.एफ.सी.एस. ने 1942 से अनुसरण किए जा रहे व लिखित प्रबन्ध-सिद्धान्तों पर कार्य करना जारी रखा । वास्तव में, कानूनी संदिग्धता एवं भूमिकाओं का अस्पष्ट सीमाङ्कन ही इस सारी समस्या की जड़ थी ।

सहकारिता-विभाग की भूमिका

सहकारिता विभाग और वन विभाग के.एफ.सी.एस. को सहायता देने में विभिन्न भूमिकाएं निभाते थे, पर इस बात पर अक्सर भ्रान्ति बनी रही कि किसे क्या करना था । क्योंकि के.एफ.सी.एस. का पंजीकरण सहकारिता अधिनियम के अन्तर्गत इसी विभाग द्वारा किया जाता था इसलिए अन्तिम उत्तरदायित्व उस पर ही ठहरा । सहकारिता विभाग का कर्मचारी वर्ग, जो इस प्रयोग के प्रति संवेदनाशील था, इन्हें प्रशासनिक-बल प्रदान करने का काम करता था जिसमें, लेखा-जोखा व लेखा जांच करना और संस्था प्रबन्ध में सहायता

करना शामिल था । सहकारिता विभाग आरम्भ से ही विभाग में के.एफ.सी.एस. अनुभाग स्थापित करके, समस्याओं व कार्य योजना पर विचार विमर्श के लिए के.एफ.सी.एस. सदस्यों की मासिक बैठकें आयोजित करवा कर कार्य को सुचारू रूप से चलाने में जिम्मेदारी एकीकृत होकर नये हिमाचल के सहकारिता विभाग पर आ पड़ी । पर नए सहकारिता विभाग ने न तो के.एफ.सी.एस. को बल प्रदान करने के लिए कर्मचारी ही-प्रति-नियुक्त किए न ही कोई विशेष प्रभाग स्थापित किया ।

के.एफ.सी.एस. की मासिक गतिविधियों, जिसमें लेखाजोखा व लेखा जांच भी शामिल है, के प्रबन्ध की जिम्मेदारी जो पहले पंजाब के सहकारिता विभाग के विकास अनुभाग के प्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा सम्भाली जाती थी अब हिमाचल प्रदेश के सामान्य सहकारी सभाओं के कार्यभार से दबे सहकारिता विभाग पर आन पड़ी । यह हिमाचल प्रदेश के सहकारिता विभाग का कर्मचारी वर्ग न तो के.एफ.सी.एस. के विशेष लेखा शीर्षो के अन्तर्गत लेखाजोखा करने में समर्थ था और न ही वन विभाग से इन के.एफ.सी.एस. के लिए सहायता उपलब्ध करवाने की विधि से परिचित था । यद्यपि सहकारिता विभाग के.एफ. सी.एस. को प्रशासनिक बल प्रदान करता था और अनियमित ढंग से बैठके भी आयोजित करवाता पर 1971 से या यूं कहिए 1966 से ही के.एफ.सी.एस. अनाथ हो गई । विभाग ने, लगता है के.एफ.सी.एस. योजना को चालू रखने के लिए कोई जिम्मेदारी स्वीकार नहीं की ।

अन्त में सहकारिता विभाग ने अपने आप को कुछ प्राथमिक सहकारी सभाओं का ही जिम्मेदार विभाग समझ लिया, जिनके पास कोई सम्पदा जैसे वन इत्यादि नहीं थे, जिनसे आय पैदा की जाती हो । उत्तरदायी संस्थाएं यथा वन विभाग व सरकार के.एफ.सी.एस. के गत 23 वर्ष से किए गए पत्राचार के बावजूद उनके तर्को के प्रति संवेदनहीन रहे । के.एफ.सी.एस. के पुनर्जीवन के लिए सहकारिता विभाग के मुख्यालय से किए गए पत्राचार से अतिरिक्त पंजीकार (सहकारी सभाएं) धर्मशाला के कार्यालय में फाइलें भरी पड़ी हैं । के. एफ.सी.एस. को "सामाजिक वानिकी योजना" एवं तदनन्तर, "वन लगाओं रोजी कमाओं" जैसी योजनाओं से जोड़ने के लिए अरण्यपाल धर्मशाला से भी पत्राचार किया गया । के.एफ.सी.एस. के सघन प्रयासों और इन नई वन सम्बन्धी

योजनाओं से जुड़ने में अपनी रूचि प्रदर्शित करने वाले प्रस्ताव भेजे जाने पर भी वन विभाग ने साफ मना कर दिया । इसके लिए वन-विभाग का तर्क था कि "कांगड़ा जिला को दिया गया लक्ष्य बहुत छोटा है और यह कि निर्देशों के अनुसार इन योजनाओं का कार्यान्वयन के.एफ.सी.एस. के अतिरिक्त सामुदायिक संस्थाओं द्वारा करवाया जाना है जबकि इन योजनाओं के लिए बनाई गई मार्गदर्शिका में किसी भी ऐसी संकीर्ण सोच का भास नहीं होता है । सहकारी विभाग के.एफ.सी.एस. के लेखाओं की जांच जारी रखे हुए है और वर्ष 1993 से लेकर प्रति सभा 1200/- वार्षिक अनुदान प्रबन्ध कार्य के लिए देता आ रहा है । सहकारिता विभाग की भूमिका सीमित है तदपि वह के.एफ.सी.एस. की उनके संघर्ष में सहायता नहीं कर पाया है ।

के.एफ.सी.एस. की भूमिका

के.एफ.सी.एस. को धीरे-धीरे अपने वनों के संरक्षण से मिलने वाले लाभों से वंचित कर दिया गया और वे धीरे-धीरे जमींदारी हिस्से से आय, बिरोजे व इमारती लकड़ी की बिक्री में से मिलने वाले भाग और सहायक अनुदान भी खो बैठे । अपने वनों पर नियन्त्रण के अधिकार को लेकर भ्रान्ति और वन विभाग द्वारा वनों का प्रबन्धन व कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन अपने हाथ में ले लेने के कारण अब के.एफ.सी.एस. की वैधानिक मान्यता कम हो गई । जो प्रभावी सामुदायिक वन प्रबन्धन का मूल तत्व थी ।

यद्यपि कुछ के.एफ.सी.एस. जैसे खलेट, त्रिपाल व गहीन लगोड़ के पास सशक्त नेतृत्व था, फिर भी उनके यथा-स्थिति के विरोध के प्रयास, सहकारिता विभाग व वन विभाग के अधिकारियों और राजनैतिक पदाधिकारियों को पृथक-2 लिखे गए पत्रों, प्रस्तावों और याचिकाओं तक ही सीमित रहे । अभी तक के. एफ.सी.एस. सदस्यों द्वारा गिने चुने सामूहिक प्रयास ही किए गए हैं और इनके पास कोई संगठित सांझा मंच नहीं है जो वन विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. को उनके वनों से बेदखल करने के प्रयासों के विरूद्ध लामबन्द कर सके । के.एफ. सी.एस. की एक दूसरे से दूरी, उन क्षेत्रों तक कठिन पहुंच जहां वे स्थित हैं और 70 के.एफ.सी.एस. को अपनी सान्झी समस्याओं पर चर्चा करने और सान्झे भविष्य की योजना बनाने के लिए, एक मंच पर लाने वाले संस्थागत ढांचे का

अभाव ही राज्य की नई सोच संयुक्त प्रभावी विरोध किए जाने में बाधक बना ।

वनों के संरक्षण और रखरखाव जैसे दूभर कार्य से होने वाले लाभों से हाथ धो बैठने के कारण सदस्यों में स्वामित्व की भावना में कमी आना भी के. एफ.सी.एस. की निष्क्रियता का अतिरिक्त कारण बना । वर्तमान में के.एफ.सी. एस. का औसत सदस्य के.एफ.सी.एस. की मौजूदा स्थिति व महत्व के बारे में संदेहयुक्त है और अनुभव करता है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन, वन विभाग द्वारा प्रबन्धित वनों से कहीं बढ़िया और लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक सक्षम और लाभदायक थे । जब कभी यह पूछा गया कि क्या वनों का प्रबन्ध पंचायतों को दे दिया जाए उत्तर न में होता । उन्हें पंचायतों, जिनका संचालन वास्तव में राजनैतिक पार्टियों या समूहों द्वारा किया जाता था, और के.एफ.सी.एस. जिसे सामुदायिक प्रबन्ध के लिए केन्द्रित संस्था के रूप में माना जाता है, में अन्तर स्पष्ट दिखता था क्योंकि इनकी कार्यशैली–गैर–राजनैतिक थी । के.एफ.सी.एस. की आन्तरिक गतिशीलता गांव के विभिन्न वन उपभोक्ता समूहों के बीच की अन्तर्क्रिया है जिसे साम्यता और टिकाऊपन की दिशा में मोड़ा जा सकता है ।

के.एफ.सी.एस. का नेतृत्व सीमित व बिखरा हुआ था, बावजूद इसके दो अवसरों पर उन्होंने राजतन्त्र का प्रभाव पूर्ण उपयोग किया । नूरपुर वन रेंज की के.एफ.सी.एस. गहीन लगोड़ के वन में से एक लिंक सड़क का सर्वेक्षण किया गया जिसके लिए यू.पी. 29 में 40 खैर के पेड़ काटने पड़े थे । इस जोड़ सड़क का निर्माण अवश्यकरणीय था, इसलिए के.एफ.सी.एस. ने पेड़ों को काट कर अपने अधिकार में ले लिया । जब उन्होंने स्थिति से अवगत करवाने और राय लेने के लिए वन मण्डल अधिकारी को लिखा तो उसने इस कार्यवाही को अवैध घोषित कर दिया ।

वास्तव में काटे गए पेड़ों की संख्या से कम की प्रविष्टी राखे के कागजों में पाकर उसने लकड़ी जब्त कर ली और उसकी नीलामी कर दी । इससे के.एफ.सी.एस. में असंतोष पैदा हुआ । तदनन्तर वन विभाग ने के.एफ.सी. एस. के जंगल में कुछ परिपक्व अवस्था को पहुंचे खैर के पेड़ काट दिए

जबकि संख्या में कम पेड़ अंकित किए गए थे, और उनकी जन-साधारण के सम्मुख नीलामी कर दी । के.एफ.सी.एस. ने कटान का ध्यानपूर्वक अन्वेक्षण (मॉनिटर) किया और तत्काल वनमन्त्री से इसकी शिकायत कर दी और उन्हें मौके के निरीक्षण के लिए भी रजामन्द कर लिया । वन मन्त्री ने काटे गए 40 खैर के पेड़ों के ठूंठ और खैर के 50 स्लीपरों को देखा जो निम्न स्तरी वन कर्मचारियों की मिलीभगत से एक स्कूल में रखे गए थे । वन मन्त्री ने वन मण्डल अधिकारी को रेंज अफसर व वन विभाग के इस मामले से जुड़े कर्मचारियों को निलम्बित करने के आदेश दिये और एक पुनरावलोकन बैठक धर्मशाला में बुलाई[28] ।

दूसरे मामले में, के.एफ.सी.एस. के बारे में, सरकार द्वारा स्पष्ट नीति घोषित न करने के कारण, कुछ सोसाइटियों के नेतृत्व ने स्थानीय विधायक से सम्पर्क करके के.एफ.सी.एस. की स्थिति और हि.प्र. वन मन्त्रालय की सोसाइटियों के भविष्य सम्बन्धी योजना पर विधान सभा में प्रश्न उठवा दिया[29], वनमन्त्री ने विधानसभा में ब्यान दिया कि "हि.प्र. सरकार ने परियोजना को आगे बढ़ा दिया है और 72-73 के लिए अनुदान भी दे दिया है, उसके बाद नहीं दिया ।

"वनमन्त्री ने सभी के.एफ.सी.एस. को बिना शर्त अनुदान राशि जारी करने की मांग को खारिज कर दिया । यह आश्वासन दिया गया कि जो सोसाइटियां सही प्रकार से काम कर रही है उनके बारे में अनुदान की संभावना पर गौर किया जा सकता है ।"

जिला वन सहकारी सभा संघ

1990-2000 के दशक के आरम्भिक काल में जिला के सक्रिय नेतृत्व ने निर्णय किया कि किसी संगठित मंच का, संयुक्त कार्यवाही के लिए न होना, प्रभावी परिवर्तन लाने के उनके प्रयासों को सीमित करने का महत्वपूर्ण कारण था। के.एफ.सी.एस. को पुनर्जीवित करने के लिए दबाव बढ़ाने के लिए एक संघर्ष समिति गठित की गई परन्तु वह अधिक सक्रिय न हो सकी और अधिक देर तक बनी न रह सकी । तदनन्तर के.एफ.सी.एस. ने कांगड़ा जिला वन सहकारी समिति संघ को सभी के.एफ.सी.एस. के संघ के रूप में गठन किया। इस संघ को 27 जुलाई 1996 (पंजीकरण क्रंमाक 418) में एक सहकारी सभा

के रूप में पंजीकृत किया गया और इसका मुख्यालय घुरकड़ी के.एफ.सी.एस. में रखा गया । पंजीकरण के बाद की गई इसकी पहली बैठक में, वन विभाग को के.एफ.सी.एस. के वनों का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने से रोकने के लिए उच्च न्यायालय और आवश्यकता पड़े तो सर्वोच्च न्यायालय[30] के हस्तक्षेप की मांग करने का निर्णय किया । के.एफ.सी.एस. का मत था कि सरकार के.एफ.सी.एस. योजना की अधिसूचना रद्द करने में असफल रहीं और सहकारिता विभाग ने के. एफ.सी.एस. को परिसमाप्त नहीं किया । इसकी दूसरी मांगों में, इसके आय के साधनों (हक चोहारम, बिरोजा और सहायक अनुदान) की बहाली, साथ ही उनकी अपने वनों की कार्य योजना बनाने व उसे क्रियान्वित करने की, उनके संरक्षण व इमारती लकड़ी के (विशेष कर गृह उत्सवों के लिए किए गए) आंबटन का पर्यवेक्षण करने की शक्तियां पुनः प्राप्त करना शामिल था । उपरोक्त में से अन्तिम मांग इसलिए महत्वपूर्ण थी क्योंकि लकड़ी की कमी एक मुख्य समस्या बन चुकी है । के.एफ.सी.एस. इस बात की आवश्यकता स्वीकारती है कि, महिलाओं और बरतनदारों को अधिक सक्रिय भूमिका देना, और सान्झा वानिकी के मौलिक प्रबन्ध-सिन्द्धातों से सहमत होना, सुनिश्चित करने के लिए बाई-लॉज (उपनियमों) में संशोधन करना पड़ सकता है । वन-सहकारी सभा संघ का विश्वास है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा सामुहिक प्रबन्ध, हिमालय के वनों की दुर्गति को रोक सकता है । उसका एक लक्ष्य के.एफ.सी.एस. को, आने वाले वर्षों में सम्पूर्ण हिमाचल में फैलाना है ।

क्षेत्र के स्थानीय विधायक श्री बी.बी.एल. बुटेल 1999 में वन महोत्सव के दिन के.एफ.सी.एस. के वन में पेड़ लगाते हुए ।

तालिका न. 3 : दावेदार संस्थाओं द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण

दिए गए विभिन्न तर्कों का संक्षेप और लेखक द्वारा की गई टिप्पणियां ।

वन विभाग द्वारा अपनाया गया रूखः

उन वनों को जो के.एफ.सी.एस. के अधीन थे, अपने हाथ में लिए जाने के लिए वन विभाग विभिन्न विरोधाभासी तर्क प्रस्तुत करता है ।

1. वन विभाग का मत है कि जो जमीनें के.एफ.सी.एस. को दी गई थी वे पंचायत की थी और जब वर्ष 1974 में 'एच.पी. विलेज कॉमन लैण्ड वैस्टिंग एण्ड युटिलाईजेशन अधिनियम' के अन्तर्गत सभी शामलात भूमि वन विभाग में निहित कर दी गई तो के.एफ.सी.एस. को उन भूमियों को प्रबन्ध के लिए देने का और उनके प्रबन्ध के लिए वित्तीय सहायता के रूप में सहायक अनुदान देने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता ।

टिप्पणी

वास्तव में के.एफ.सी.एस. 1945 में गठित की गई और इसी वर्ष इन भूमियों का स्वामित्व भी उन्हें दिया गया, जबकि भूमि पंचायतों को तो 1961 में दी गई । इसके अतिरिक्त के.एफ.सी.एस. की कुल भूमि में शामलात भूमि मात्र 1 प्रतिशत है । सम्भवता: इस राज्य के लोगों के इन वनों तक पहुंच और उपयोग के अधिकारों पर कुछ अन्य तत्व भी प्रभाव डाल रहे थे । 1972 और 1974 के बीच पास किए गए भू-सुधार अधिनियमों के अन्तर्गत सरकार ने सारी शामलात भूमि का स्वामित्व वन विभाग के नाम स्थानान्तरित कर दिया - जो सरकार के अपने बन्दोवस्तों द्वारा एक शताब्दी से अधिक समय तक खेवटदारों में निहित रही थी । बिना किसी विचार विमर्श के और मालिकों को न्याय-सम्मत मुआवजा दिए इस भूमि पर कब्जा कर लेना इस विचार की पुष्टि करता है कि राज्य सरकार भागीदारी की विरोधी और स्वार्थी है । इसका परिणाम यह हुआ कि इन सार्वजनिक सम्पदाओं तक खुली पहुंच और अन्धाधुन्ध दोहन की स्थिति आ गई और इस सामुदायिक सम्पदा पर विशेष प्रकार की दारूण विपदा आन पड़ी ।

2. वन विभाग का दावा है कि अब हिमाचल सरकार समस्त वन भूमि जिसमें के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन भी शामिल है, की मालिक है और यह कि इस वन भूमि का वैधानिक संरक्षण उसके हाथ में है[31] । और उसका यह भी मत है कि भारतीय वन अधिनियम 1980 के अनुसार सब किस्म की वन भूमि पर सभी राज्यों में उनके अपने-अपने वन विभाग का स्वामित्व होगा । इसलिए कोई सहकारी सभा कानूनी तौर पर इन भूमियों पर अधिकार का दावा नहीं कर सकती

टिप्पणी

पंजाब राज्य में जिस विशेष आदेश से के.एफ.सी.एस. का गठन किया गया उसकी अनदेखी करके के.एफ.सी.एस. जैसे अनोखे प्रयोग पर हिमाचल राजस्व अधिनियम लागू करने का ही यह परिणाम है । इस तर्क का एक और अर्थ है कि वनों और सामुदायिक भूमि पर स्वामित्व के कारण जो अधिकार बनते है। के.एफ.सी.एस. उसका व दावा नहीं कर सकती और न ही के.एफ.सी.एस. के अपने ही प्रबन्ध में जो वन है उनसे गैर इमारती वन उत्पादों की निकासी का उन्हें अधिकार है । वन विभाग इस बात से साफ इन्कार करता है कि

वह स्वंय सरकारी अधिसूचना और विशेष आदेश द्वारा के.एफ.सी.एस. के गठन उन्हें संम्पोषित करने और उनकों प्रबन्ध के लिए वन सौंपने के लिए जिम्मेदार है । सरकार की और से स्पष्ट मार्गदर्शन के अभाव में वन विभाग तकनीकी तर्को की आड़ में छुप रहा है ।

3. वन विभाग का दावा है कि सरकार द्वारा दी गई के.एफ.सी.एस. योजना को अवधि बढ़ोतरी वर्ष 1973 में समाप्त हो गई और अब यह वन सहकारी सभाएं – अवैध हैं, अनाधिकृत तौर से कार्यरत हैं और सरकारी वनों से राजस्व अवैध साधनों से प्राप्त कर रही हैं । इसलिए उनके लिए कार्ययोजना तैयार करने का वन विभाग के पास कोई कारण नहीं है[32] ।

टिप्पणी

के.एफ.सी.एस. कानूनी तौर पर विद्यमान है क्योंकि उन्हें पंजाब सहकारी अधिनियम (प्प 1912) के अन्तर्गतगठित किया गया था और वे अब हिमाचल प्रदेश सहकारी सभा अधिनियम 1968 के अधीन कार्य कर रही है । 1973 के बाद भी उनमें से बहुत सी अपनी कार्यकारिणी का चुनाव प्रति दो वर्ष में एक बार करती रही है और साथ ही अपने लेखाजोखा की सहकारिता विभाग से प्रतिवर्ष जांच व पड़ताल करवाते हैं । वहीं वन विभाग 1983 तक इन के.एफ.सी.एस. के वनों के लिए कार्य योजनाएं बनाता रहा है जो पहले कहता था कि के.एफ.सी.एस. 1973 के बाद अवैध रूप से कार्य कर रही है । इस प्रकार के दोहरे मानदण्ड जो वन विभाग द्वारा अपनाए गए उससे लगता है कि उनके पास सान्झा वन प्रबन्धन के लिए कोई दीर्घकालिक सम्बद्धता वाली नीति नहीं है ।

4. इस तरह पल्टा–खाने के लिए वन विभाग यह तर्क देता है कि अब की स्थिति 1935 की स्थिति से बड़ी भिन्न है । उस समय असीमांङ्कित वन बड़ी दयनीय दशा में थे और सरकार के पास कोष की कमी थी । अब इन क्षेत्रों में वनरोपण कर दिया है और वन रोपण के लिए क्षेत्र नहीं बचे हैं और सरकार के पास पैसे की कमी भी नहीं है[33] ।

टिप्पणी

इसका अभिप्राय यह लगता है कि के.एफ.सी.एस. का गठन और वन विभाग द्वारा दिया गया सम्पोषण मात्र एक साधन था । जिसका उसने प्रयोग किया क्योंकि उसके पास नष्ट प्राय: वनों की स्थिति सुधारने के लिए पैसे की कमी थी । अब क्योंकि ये वन सफलतापूर्वक पुनर्व्यवस्थित किए जा चुके हैं उन्हें अपने हाथ में लेने, का लालच वन विभाग पर हावी हो गया । ताकि इसके मुख्य लाभ (इमारती लकड़ी) के.एफ.सी.एस. द्वारा न प्राप्त कर लिए जाएं, यह मजबूरी बन गई है । वन संसाधनों में सरकार के निहित-स्वार्थों की इससे बेहतर मिसाल नहीं हो सकती । इससे यह संकेत मिलता है कि सरकार द्वारा हाल ही में सान्झा वन प्रबन्धन व लोगों की भागीदारी के विषय में जो घोषणाएं की गई है उतनी गम्भीरता से नहीं की गई है जितनी कि होनी चाहिए थी ।

1989 में एक वरिष्ठ वानिकी व्यवसाय विशेषज्ञ ने कहा[34], जिसका लिखित विवरण उपलब्ध है, कि क्योंकि सरकार ने 31/3/1972 के उपरान्त सभाओं को चालू रखने की अवधि बढ़ोतरी नहीं दी है, सभाओं को दिए गए वन अब के.एफ.सी.एस. के नियन्त्रण में नहीं हैं । वनों का प्रबन्धन वन विभाग ने अपने हाथ में ले लिया है और अब आगे इन वनों से सम्बन्धित सभी गतिविधियां (वन अपराधों का विचाराधिकार, बरतनदारों को पेड़ देना) केवल वनमण्डल अधिकारी द्वारा संचालित की जाएंगी न कि किसी भी सूरत में सभाओं द्वारा ।

1973 से 1995 को अवधि में वन विभाग यह मानकर चलता रहा कि उसने के.एफ.सी.एस. के वनों पर कानूनी रूप से नियन्त्रण किया है, तदपि अरण्यपाल वन विभाग धर्मशाला (जिला मुख्यालय) इस बात को स्वीकारता है कि कानूनी तौर पर इन वनों पर प्रबन्धकीय अधिकार के.एफ.सी.एस. का ही है । धर्मशाला वृत के मौजूदा अरण्यपाल का विश्वास है कि अभी तक वन विभाग औपनिवेशिक सोच का शिकार रहा है और सहभागी वन प्रबन्ध का सामान्य तौर पर और के.एफ.सी.एस. का विशेषकर विरोध करता रहा है । उसके अनुसार विभाग की यह वर्तमान सोच है कि के.एफ.सी.एस. को पुनर्व्यवस्थित किया जाए और एक बार फिर उन्हें वनों का प्रबन्ध न करने के लिए अधिकृत किया जाए । यह लगता है कि पहले वन विभाग का इमारती लकड़ी व मिलने वाले राजस्व की दृष्टि से वनों में सबल व्यापारिक स्वार्थ

था । परन्तु 1970 और 1985 के बीच के काल में तेजी से वन विनाश हुआ और यहां तक कि वन विभाग का भी नियन्त्रण उन वनों पर से निकल गया, जिनका अभूतपूर्व सीमा तक दोहन किया गया था । अब, इसलिए, विभाग की प्राथमिकता वनों का संरक्षण हो गई है । इस दृढ़ कथन या दावे का असर अभी तक सहभागी वन प्रबन्धन की नीति में सामान्य तौर पर और के.एफ.सी.एस. के सन्दर्भ में विशेषकर प्रतिबिंबित होना बाकी है ।

सहकारिता विभाग द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण

सहकारिता विभाग के सहायक पंजीकार के के.एफ.सी.एस. के बारे में विचार उसके कार्यालय से ही प्रकाशित दस्तावेज जिसका शीर्षक है, "पैरा वाइज़ कमैण्टस फॉर रिवाईवल ऑफ के.एफ.सी.एस." से आंके जा सकते हैं । सहायक पंजीकार, (सहकारी सभाएं) के.एफ.सी.एस. की गलत कार्यशैली को दोषी ठहराता है और इसका कारण, उसके कथन के अनुसार, वन विभाग व सहकारिता विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. को दिए जाने वाली तकनीकी व वित्तीय सहायता का अभाव है । उसका विचार है कि के.एफ.सी.एस. योजना को 1 से 5 वर्ष तक की छोटी-2 अवधि बढ़ोतरियां वन विकास जैसी योजनाओं के लिए न काफी और हानिकारक सिद्ध हुई क्योंकि वन विकास के लिए लम्बी अवधि वांछित होती है । अत: सहायक पंजीकार ने सीधे 30 वर्ष अवधि की बढ़ोतरी का सुझाव दिया है ।

सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) ने आगे कहा है कि कुछ के.एफ.सी.एस. जिनकी वित्तीय स्थिति कमजोर थी वह सहायक अनुदान बन्द कर दिए जाने से फेल हो गई । उसने सिफारिश की है कि सम्बन्धित के.एफ.सी.एस. को रूका हुआ सहायक अनुदान तत्काल अदा किया जाए ताकि वे अपनी वानिकी गतिविधियां चालू कर सकें । सहायक पंजीकार का कहना है कि वन विभाग को चाहिए कि वह के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणियों और कर्मचारियों को तकनीकी मार्गदर्शन दें ताकि वे वन भूमि का संरक्षण, सुधार व प्रबन्ध कर सकें । उसने एक और सुझाव दिया कि सहकारिता विभाग को अपने भीतर एक अनुभाग स्थापित करना चाहिए जो के.एफ.सी.एस. को बल प्रदान करने का काम करें, जैसी प्रथा पंजाब में थी । सहायक पंजीकार का यह भी मानना है कि के.एफ.सी.एस. को ठीक मार्गदर्शन न मिलने का कारण सहकारिता और वन विभाग के बीच समन्वय का न होना भी था । उसने यह

सिफारिश भी की कि जिला स्तर पर एक समन्वय समिति का गठन किया जाए जिसके, वनमण्डल अधिकारी, उप-पंजीकार (सहकारी सभाएं) और सहायक पंजी सहकारिता विभाग, सभी सदस्य हों और अध्यक्षता वन विभाग के पास रहे । इन सुझावों का कोई लाभ न मिला क्योंकि वन विभाग और सहकारिता विभाग के बीच बैठक और पत्राचार बिना किसी ठोस परिणाम के होते रहे जिसका कारण था कि निर्णायक शक्ति राजनेताओं के पास थी । इसके अतिरिक्त सहकारिता विभाग की भी के.एफ.सी.एस. के लिए कोई स्पष्ट व ठोस नीति नहीं है ।

6

भविष्य की सम्भावनाएं

वर्तमान परिदृष्य

वर्तमान स्थिति का सहजता से संक्षिप्त विवरण दिया जा सकता है । सरकार तकनीकी तौर पर मानती है कि के.एफ.सी.एस. निलंबित सजीवता की दशा में हैं वास्तविकत स्थिति यह है कि संस्थाएं (उनमें से कुछ) जीवित हैं और सक्रिय हैं । लोग, अपने जंगलों के प्रबन्ध व उपयोग से हर तरफ किए जाने और सरकार द्वारा उनके अधिकारों व अस्तित्व को अपनी मर्जी से अपने वश में किए जाने के ढंग से नाराज हैं व आक्रोश में है । के.एफ.सी.एस. अपने आप में सहभागी और टिकाऊ वन प्रबन्ध का हिमाचल प्रदेश में उपयुक्त वातावरण तैयार करने के लिए किए जाने वाले व्यापक संघर्ष के एक पहलु के रूप में, महत्वपूर्ण हैं । के.एफ.सी. एस. सहभागी वन प्रबन्धन के लिए सरकार द्वारा किए गए प्राचीनतम प्रयासों का प्रतिनिधित्व करती है । परन्तु व्यापक रूप से लगता है कि सरकार की गतिविधियां स्थानीय समुदायों को वनों से जोड़ने के बजाए विमुख करने की

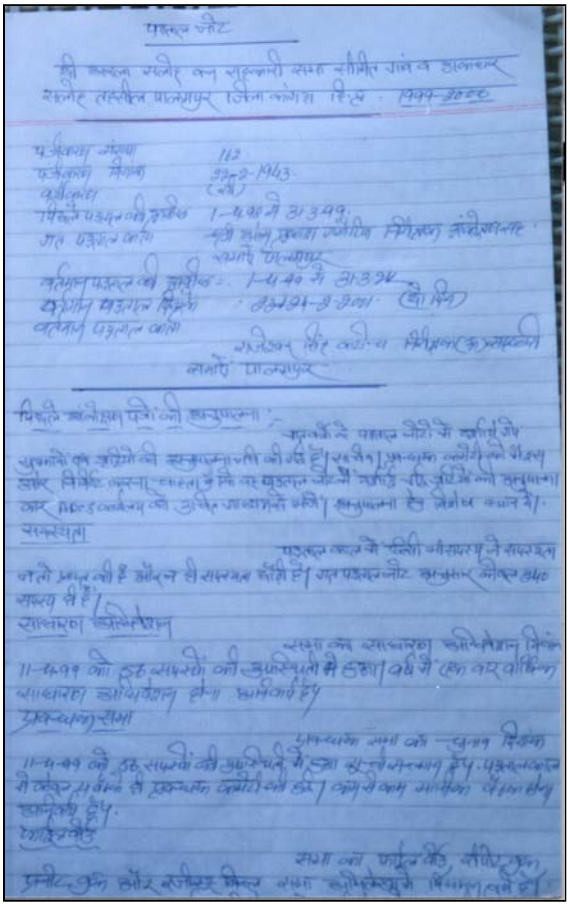

वर्ष 1999-2000 में अरला सलोह के.एफ.सी.एस. सम्बन्धी, सहकारिता विभाग के निरीक्षक द्वारा बनाई गई रिपोर्ट

दृष्टि से रची गई हैं । 1980 से हिमाचल प्रदेश के वन विभाग ने सहभागी वन प्रबन्धन के, लगभग वैसे ही परिणामों के लिए, विभिन्न ढांचे परखना जारी रखा है । और इनका हश्र भी पहले जैसा ही होने वाला है । इन प्रयासों के हाल के इतिहास से, यह पूर्वानुमान लगानो और आगे बढ़ने के लिए ठीक रास्ता चुनने में सहायता मिल सकती है ।

हिमाचल प्रदेश में सहभागी-वन-प्रबन्धन का हाल का इतिहास

इण्डो-जर्मन-धौलाधार परियोजना (आई.जी.डी.पी.)

आई.जी.डी.पी. की अवधारणा इस दावे के इर्द-गिर्द गढ़ी गई कि हिमालय क्षेत्र की समस्याएं, सामाजिक-आर्थिक व पर्यावर्णीय हैं और ये दोनों पक्ष एक-दूसरे पर आश्रित हैं या एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं । वर्ष 1980 से 1989 तक चली इस परियोजना के अन्तर्गत बिनवा नदी के ऊपरी जलागम क्षेत्र के धौलाधार के दामन में बसे 100 गांव आते थे । इस परियोजना ने लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए एक योजना आरम्भ की जिसे नाम दिशा 'टूको' अर्थात् (आस्था एवं विश्वास) । एक पृथक सामाजिक विकास अनुभाग स्थापित किया जिसके माध्यम से गांव-समुदायों तक सम्पर्क साधा गया । आई.जी.डी.पी. ने गांव स्तर की संस्थाओं को पर्वत-प्रणालियों में परिवर्तन लाने के लिए सशक्त कारक मान कर; लगभग 53 गांव विकास कमेटियों, 73 युवक मण्डलों और महिला मण्डलों का गठन व सशक्तिकरण करने में सहायता की ।

आरम्भ में प्रत्येक मूल-गांव में सिलसिलेवार बैठके की गई । तदनन्तर स्थानीय समुदायों ने परियोजना में सम्मिलित किए जाने की प्रार्थना करनी शुरू कर दी । आई.जी.डी.पी. के कर्मचारियों की सहायता से प्रत्येक चयनित गांव में गांव-विकास-समिति का गठन किया गया । अपने में आस्था और अपनी योग्यताओं में विश्वास प्राप्त कर लेने के बाद-गांव-विकास-समितियों ने आई.जी. डी.पी. के कार्यक्रमों की योजना बनाने और क्रियान्वयन करने का काम आरम्भ कर दिया । ध्यान योग्य उपलब्धियां निम्नलिखित हैं ।

- चौड़ी पत्ती के पेड़ लगाना ताकि भविष्य में वे चारे का स्रोत बने और गांव-पौधशालाएं स्थापित करना ताकि गांव-समुदायों को निरन्तर पौधे उपलब्ध हों ।
- सामुदायिक बागीचे एवं चारा देने वाली फसलें लगाना ।
- बांधकर चारा खिलाने को लोकप्रिय बनाना और बन्द की गई और वन-रोपित भूमि पट्टियों में से घास का बराबर बंटवारा ।
- नस्ल-सुधार व अनुत्पादक पशुधन को घटाना और इस तरह किसानों की आय में वृद्धि करना ।
- महिलाओं के स्वास्थ्य और पाकशाला को स्वास्थ्यकर बनाने की दृष्टि से धुआं रहित धौलाधार चुल्हों के उपयोग को प्रोत्साहित करना ।
- कृषि सम्बन्धी जानकारी और प्रसार कार्य से कृषि उत्पादों को बढ़ाना ।

गांव स्तरीय सस्थाओं का, स्थानीय संसाधनों का प्रबन्ध करने की उनकी योग्यता में आस्था व विश्वास खड़ा करना, हिमाचल प्रदेश में सहभागी वन प्रबन्धन के लिए एक प्रशंसनीय व महत्वपूर्ण पग है । तदपि किसी सरकारी विभाग ने (वन विभाग समेत जो आई.जी.डी.पी. का मुख्य भागीदार है) आई.जी. डी.पी. द्वारा गठित गांव स्तरीय संस्थाओं को गांव समुदायों को गतिशील बनाने के लिए केन्द्रीय संस्था के रूप में मान्यता नहीं दी, इसलिए वह उपेक्षित हो गई और अन्ततः आई.जी.डी.पी. के समापन के साथ ही मृत-प्राय हो गई । वन विभाग की जो इस परियोजना रूपी प्रयोग के पीछे की मुख्य शक्ति थी, इसने इस सफल समुदाय-प्रबन्धित-वानिकी से, प्रकट रूप से, कोई सबक नहीं सीखा ।

सामाजिक वानिकी परियोजना

राष्ट्रीय-सामाजिक-वानिकी परियोजना हिमाचल प्रदेश में कुल 57 करोड़ रूपये के बजट के साथ 1985 और 1993 के बीच क्रियान्वित की गई । इस परियोजना के मुख्य उद्देश्य थे - ग्रामीण -निर्धन-लोगों के लिए, इमारती लकड़ी, ईधन व चारे का उत्पादन बढ़ा कर - आय व रोजगार पैदा करना और निर्वनीकरण से हो रहे पर्यावरण के क्षरण को रोकना । इस योजना में, पेड़ों का

पट्टा निर्धन व भूमिहीनों को देना, सामुदायिक वन खण्ड लगाना (स्वंय-सहायता से व वर्षा पर आश्रित), नष्ट प्राय: वनों को पुनर्जीवित करना, किसान पौधशालाएं, पौधों का वितरण और निजी बंजर जमीनों पर विभिन्न प्रकार के पेड़ लगाना आदि कार्यक्रम शामिल थे । "वन लगाओं रोजी कमाओं" योजना जो बाद में घोषित की गई इसी परियोजना का एक घटक थी ।

इस परियोजना में हिमाचल प्रदेश के सभी 12 जिले सम्मिलित किए गऐ और इसकी गतिविधियों को गांव के लोगों के जरिये या उनके परामर्श के साथ क्रियान्वित किया गया । वन विभाग ने गांव वालों से संवाद ग्राम पंचायतों या दूसरी गांव स्तरीय संस्थाओं (यथा महिला मण्डल) के माध्यम से आरम्भ किया। पहली बार बहुत से गांवों में इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए ग्रामीण वन विकास समितियां स्थापित की गई । महिला मण्डल, ग्राम पंचायत व अनुसूचित जाति, सभी से एक-एक प्रतिनिधि समिति में डालकर, समस्त ग्राम समुदाय की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास फिर भी, सफल नहीं हुए । (सूद 1994) गांव विकास समितियों ने न तो सहभागी रचना-तन्त्र खड़ा किया और न ही योजना बनाने और प्रबन्धन करने के लिए "नीचे से ऊपर" वाली सोच विकसित की । स्थानीय वन उपभोक्ताओं के प्रतिनिधित्व का अभाव और संभ्रांत लोगों के प्रभुत्व के कारण यह प्रयोग लोगों को औपचारिक रूप से जोड़ने तक ही सीमित रहा । वन रक्षक अपने पद के कारण ग्राम विकास समिति का सदस्य सचिव होता था और वह गांव के लिए एकीकृत-संसाधन प्रबन्ध योजना तैयार करता था । जिससे वन विभाग का ही आशय पूरा होता न कि सामुदायिक-स्वामित्व का । जबकि कागज़ों में सामाजिक वानिकी परियोजना के अन्तर्गत 1,00,000 हैक्टेयर में वन रोपण किया गया पर लोगों की भागीदारी सीमित ही रही । वन विभाग लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में न रखते हुए अपनी पसंद की प्रजातियों (यथा युकालिप्टस) के पेड़ लगाता रहा। इस से कई समुदाय इसे "असामाजिक वानिकी" की संज्ञा भी देते हैं ।

सान्झा वन प्रबन्ध-एक राष्ट्रीय रणनीति

1970-80 के दशक के आरम्भ तक भारत भर के बहुत से वन-वैज्ञानिकों को विरासत में मिली वन-संरक्षण प्रणालियों की प्रभावकारिता पर गम्भीर सन्देह होने लगा था । लोगों को वनों से बाहर निकाल फैंकने और

उनके अधिकारों को सीमित करने की प्रक्रिया को जारी रखने के बजाए उन्होंने लोगों को वन भूमि के प्रबन्धन में और वन भूमियों के, अवैध कटान, चरान, आग और अवैध कब्जों से संरक्षण के कार्य में जोड़ना शुरू किया । इसके बदले वन उपभोक्ताओं को घास, अन्तरिम उत्पाद व तैयार फसल में से हिस्सा देना स्वीकृत किया । यह कार्य-पद्धति पहले पश्चिमी बंगाल में शुरू की गई और फिर उड़ीसा, गुजरात, हरियाणा तक व तदनन्तर उत्तर प्रदेश और बिहार तक इसे बढ़ाया गया ।

इन प्रयोगों व आन्दोलनों की सफलता ने राष्ट्रीय स्तर के नीति निर्धारकों को प्रभावित किया और 1988 में नई वन नीति लाने का मार्ग प्रशस्त किया । इस नीति के द्वारा व्यापारिक लकड़ी उत्पादन पर दिया जाने वाला जोर हटाकर, पर्यावरण स्थायित्व व परास्थितिकीय सन्तुलन सुनिश्चित करने के महत्व पर बल दिया । यह भी स्वीकार किया गया कि वनों से प्राप्त होने वाले उत्पादन पर पहला अधिकार आदिवासी समुदायों और वनों के समीप रहने वाले निर्धन लोगों का था । वर्ष 1990 भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय ने 1988 की वन नीति को एक सरकारी आदेश द्वारा सभी राज्यों को उपहार के रूप में दिया और आग्रह किया कि नष्ट प्रायः वन भूमि का प्रबन्धन समुदायों के साथ मिल कर किया जाए और जहां हो सकें तो गैर-सरकारी संस्थाओं से सहयोग लिया जाए । सरकारी आदेश में, विभिन्न भागीदारों के परस्पर मिलकर काम करने की विधियों के बारे में मार्गदर्शन दिया गया था । "सान्झा वन प्रबन्धन" कहलाने वाली इस प्रणाली में, वन विभाग द्वारा किये जा रहे सत्तावादी वन प्रबन्धन से हटने जैसा परिवर्तन दिखता है । वर्ष 1993 में हिमाचल प्रदेश सरकार ने आदेश जारी किया और सान्झा वन प्रबन्ध को प्रदेश में लागू करने के लिए मार्गदर्शन की अधिसूचना जारी की ।

के.एफ.सी.एस. और सान्झा वन प्रबन्ध के लिए सरकार द्वारा जारी आदेश व अधिसूचनाओं के बीच 50 वर्ष का कालान्तर है । दस्तावेजों के अनुसार दोनों योजनाओं के सामाजिक, राजनैतिक व वन-प्रबन्धन उद्देश्यों में भिन्नता दिखाई देती है पर वास्तव में वर्तमान स्थिति के सन्दर्भ में यदि सम्बन्धित विषयों का परीक्षण किया जाए तो लगता है कि समानताओं की तुलना में भिन्नताएं कम प्रभावशाली हैं । वन विभाग व अन्य प्रबन्धकीय दावेदार संस्थाओं द्वारा अपनाई

गई सोच की तुलना से कुछ ऐसे सबक व अन्तदृष्टि मिलते हैं, जिससे सान्झा वन प्रबन्धन के हिमाचल प्रदेश में सफलता से क्रियान्वित करने में सहायता मिल सकती है । तुलना से संकेत मिलते हैं कि 1993 का सान्झा वन प्रबन्ध सम्बन्धी आदेश कुल मिला कर "नई बोतल में पुरानी शराब" जैसा है । किन्तु इसका सकारात्मक पहलु यह है कि आदेश में भागीदारी व लाभों के समान वितरण सुनिश्चित करने का प्रावधान है । व्यवहार में सान्झा वन प्रबन्धन के लिए मार्ग दर्शन प्रभावी ढंग से सरकारी वन मण्डलों को नहीं भेजा गया । वर्ष 2001 तक 1,20,000 टीकों वाले 20,000 गांवों में से मान 1000 गांवों में ही गांव वन विकास समितियां बनाई गई हैं । किस सीमा तक इन समितियों का व्यवहार भागीदारी पूर्ण रहा यह भी सन्देहास्पद है, क्योंकि सान्झा वन योजना को वन विभाग द्वारा आरम्भ करवाने से पहले वन विभाग के कर्मचारियों को इसके विषय में सघन प्रशिक्षण नहीं दिया गया । उनका व्यवहार सामाजिक वानिकी में जैसा रहा वैसा ही सत्तावादी और सहभागिता विहीन चल रहा है ।

इण्डो जर्मन चंगर परियोजना व हिमाचल प्रदेश वानिकी परियोजना

एक अधिक विस्तृत संयुक्त सहभागी वन प्रबन्धन पद्धति का प्रयोग दो द्विपक्षीय परियोजनाओं में किया जा रहा है । यद्यपि दोनों परियोजनाएं 1990-2000 के दशक के आरम्भ से चल रही हैं, पर यह प्रयोग अग्रगामी क्षेत्रों तक ही सीमित रहा । यह सोच नीचे से ऊपर की ओर की जाने वाली सहभागी योजना प्रक्रिया विकसित करने पर बल देती है । इसका बल उपभोक्ता समुदायों पर था न कि व्यक्तियों पर । इस बात पर भी जोर डाला गया था कि वन विभाग के भीतर ही इतनी क्षमता पैदा की जाए कि वह अपने कर्मचारियों को व्यवहारिक सम्पर्क साधने व सहायता पहुंचाने की कला में प्रशिक्षण दे सकें । इण्डो जर्मन चंगर परियोजना वर्ष 1993 में जर्मन-तकनीकी सहयोग से, 15 वर्ष की, योजनाबद्ध क्रियान्वयन अवधि के लिए आरम्भ की गई। इसके अन्तर्गत कांगड़ा जिला का 400 वर्ग किलोमीटर से कुछ अधिक क्षेत्र आता है । इस क्षेत्र में 570 गांव है । यह एक एकीकृत-विकास परियोजना है वानिकी जिसका एक घटक है । बल, गांव की स्वंय सहायक संस्थाओं के सशक्तिकरण पर दिया गया है । जो बाद में सहभागी, एकीकृत भूमि उपयोग योजना बनाने में सहायक होंगी ।

हिमाचल प्रदेश वानिकी परियोजना (एच.पी.एफ.पी.) के लिए 'यू.के. डिर्पाटमैन्ट फॉर इन्टरनेशनल डिवैलपमैन्ट' द्वारा निधि उपलब्ध कराई गई है । इसे 1994 में कुल्लू और मण्डी जिलों में चलाया गया और अभी 2002 में भी यह चालू है । परियोजना का ध्यान प्रक्रिया के दौरान सीखने और मॉनिटर करने पर है । इसका उद्देश्य था वन विभाग की समान्य कार्यशैली में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना और जोर इस बात पर डाला गया है कि वन विभाग के कर्मियों के सभी स्तरों पर रूझान बदले जाएं । 50 वर्ष पूर्व के.एफ. सी.एस. के गठन के समय अपनाई गई कार्य विधि से यदि तुलना की जाए तो इस परियोजना का कार्य-प्रकार धीमा और सतर्कता पूर्ण है ।

परियोजना के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए किए गए अध्ययन से परियोजना के पहले चरण में की गई उपलब्धियों पर चिन्ता के संकेत मिलते हैं। समुदायों के साथ कार्य करने की प्रक्रिया लम्बी और मंहगी साबित हुई । जो समूह गठित किए गए इतने बड़े थे और ठीक प्रतिनिधित्व न कर पाने वाले थे जिससे-निर्धन लोगों की प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं का सूक्ष्म-कार्य योजनाओं की गतिविधियों में आभास नहीं मिलता । सूक्ष्म योजनाएं भी वन क्षेत्रों के बन्द करने और पुन:वनरोपण करने के प्रति ही ज्यादा रूझान रखती थी । लघु कार्य योजनाओं के कोष में वैतनिक मजदूरी के अवसरों का प्रभावपूर्ण प्रावधान था । ऐसा, रकबा बन्दी से घास, ईंधन व चारा से होने वाले लाभ में कमी की भरपाई के रूप में किया गया था । वन विभाग के कर्मचारी वर्ग को कार्यविधि और सुग्राही बनने में पर्याप्त प्रशिक्षण होने के बावजूद, वन-मण्डल-अधिकारी और अरण्यपाल, सहभागी-वन-प्रबन्ध के पक्ष में बदले हुए प्रतीत नहीं होते थे । यद्यपि निचले स्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारी सहभागी-वन-प्रबन्ध को काफी लाभदायक पाकर इसके प्रति सिद्धान्त रूप से प्रतिबद्ध हैं । इसके दूसरे चरण में जोर टिकाऊ आजीविका की ओर मुड़ गया क्योंकि यह समुदायों और वन विभाग के लिए मिलकर लम्बे समय में सहभागी वन प्रबन्ध की जिम्मेवारी उठाने के लिए सशक्त कारण है ।

कुल मिलाकर इन दोनों परियोजनाओं में वन विभाग का जोर उदाहरण एकत्र करने और अनुभव प्राप्त करने पर रहा । लगभग दस वर्ष के उपरान्त, लेखक की राय में, संयुक्त सहभागी वन प्रबन्ध (जे.पी.एफ.एम.) वन विभाग का

एक और मरू उद्यान प्रयोग बन कर रह गया है । जबकि मुख्यधारा की सरकारी नीतियां और रूझान अपरिवर्तित ही हैं ।

सान्झी वन योजना

सान्झी वन योजना, जे.एफ.एम. की तरह सहभागी वन प्रबन्ध की दिशा में किया गया एक अन्य प्रयोग है किन्तु इसके लिए वित्तीय प्रावधान सरकारी बजट में किया गया है । यह 1998 व 1999 के बीच 10 करोड़ रूपये के आरम्भिक वित्तीय प्रावधान के साथ संचालित की गई । यह योजना, ग्राम पंचायत (एक ग्राम स्तरीय स्थानीय स्वशासन के लिए निर्वाचित संस्था) को उन सामाजिक संस्थाओं की सूची में सम्मिलित मानती है, जिन्हें योजना की गतिविधियों से जोड़ा जा सकता है । इस योजना का लक्ष्य था, नष्ट प्राय: वनों को पुनर्जीवित करना और वनों से सम्बन्ध न रखने वाली सामाजिक सम्पदाओं को बढ़ाना (कुल बजट का 25 प्रतिशत) यद्यपि यह दोनों पारस्परिक तौर पर मेल नहीं खाते । योजना इस बात का भी विश्वास दिलाती है कि जो गांव स्तरीय वन विकास समितियां (वी.एफ.डी.सी.) गठित की जाएंगी उन्हें वन मण्डल अधिकारी, कल्याणकारी सभा अर्थात् गैर सरकारी संस्था के रूप में सभा अधिनियम 1860 के अन्तर्गत पंजीकृत करेगा । एक और कदम आगे उठाते हुए समिति की अनुमोदित कार्य योजना के क्रियान्वयन के लिए सहायक अनुदान राशि वी.एफ.डी.सी. के अधिकारिक संयुक्त बैंक खाते में चैक द्वारा डाले जाने का प्रावधान किया है । अन्तिम फसल तैयार हो जाने पर उपभोग्य उत्पादों की हिस्सा बांट का नमूना भी नया है । योजना के अनुसार सरकारी भूमि पर खड़े पेड़ों की बिक्री राशि निम्न प्रकार से बांटी जाएगी ।

- 25 प्रतिशत वी.एफ.डी.एस. की कार्यकारिणी को सदस्यों में बांटने के लिए ।
- 25 प्रतिशत वी.एफ.डी.एस. और ग्राम विकास निधि के संयुक्त खाते में जमा करने के लिए ।
- 10 प्रतिशत ग्राम पंचायत को जिसके क्षेत्र में वी.एफ.डी.एस. पड़ती है ।
- 40 प्रतिशत सरकारी कोष में ।

व्यवहार में सान्झी वन योजना भी, हिमाचल वानिकी परियोजना के जे. एफ.एम. की कमियों से ग्रस्त है । जिनमें वन रक्षक का वी.एफ.डी.एस. का अपने पद के कारण सचिव बनाया जाना भी शामिल है । ऐसा लगता है यह योजना भी अपने पहले पांच साला कार्ययोजना काल चक्र के उपरान्त व्यवहारिक नहीं रहेगी । सहभागी वन प्रबन्ध सारे प्रदेश के 400 गांवों में आरम्भ किया गया । क्रियान्वयन के तीसरे वर्ष में ही वित्तीय कमी के कारण यह कार्यक्रम दलदल में फंस गया है ।

चालू योजनाएं और गतिविधियां

सहभागी वन प्रबन्धन नियमों का प्रारूप

1993 के सरकारी आदेश के बदले लाये जाने वाले नये सरकारी आदेश का प्रारूप और विस्तृत सहभागी वन प्रबन्धन नियम दोनों का सरकार द्वारा अनुमोदन किया जाना अभी बाकी है । प्रारूप में, वी.एफ.डी.एस. की संस्थागत स्वायत्तता को, उन्हें पंजीकृत करके व उनके प्रधानों को वन-अपराधों को निपटाने के लिए वन अधिकारी की शक्तियां देकर, बढ़ाने का प्रावधान है । फिर भी अभी उसमें काफी कमियां दिखती है । वी.एफ.डी.एस. से वन विभाग की ओर से आरक्षी का कार्य करने की आशा प्राथमिक तौर पर की जाती है । नियमों में सुझाव है, कि सम सामयिक सूक्ष्म कार्ययोजना इसकी कमियों के बावजूद जारी रखी जाए । वार्षिक क्रियान्वयन योजना प्रपत्र जो नियमों के साथ जुड़े हैं, उनका आशय है कि सूक्ष्म कार्य योजनाएं हिमाचल प्रदेश वानिकी परियोजना (एच.पी.एफ.पी.) की तुलना में कहीं अधिक वनरोपण स्थलों और बन्द रकबों का रूप धारण कर लेगी । जबकि मौजूदा वन भूमि पर विविध जीविका निर्भरताओं को सूक्ष्म योजनाओं की प्रक्रिया में एकीकृत करने की गुंजाइश लगभग शून्य होगी । लघु कार्य योजना प्रपत्रों में घास वाली भूमि व चरागाह विकास का जिक्र तक नहीं है ।

परिशिष्ट 3 में नियमों के प्रारूप की कुछ मुख्य विशेषताओं की के.एफ. सी.एस. के विशेष लक्षणों से संक्षिप्त तुलना दी गई है ।

1993 वाले सरकारी आदेश से लिया गया प्रावधान, कि फसल की अन्तिम वसूली के समय (कम से कम 20 वर्ष के काल चक्र के बाद) कुल आय में से 50 प्रतिशत वी.एफ.डी.एस. के साथ बांटना अधिक समस्या पूर्ण है। जीविका केन्द्रित सहभागी वन प्रबन्धन के लिए यह अनुपयुक्त प्रोत्साहन है, विशेषकर हिमाचल प्रदेश में जहां बहुत से वी.एफ.डी.एस. के सदस्यों को कानूनी तौर पर इमारती लकड़ी वितरण (टी.डी.) अधिकार प्राप्त हैं । वे इमारती लकड़ी की फसल वसूली से प्राप्त आय में सरकार के साथ या अधिकार रहित निवासियों से हिस्सादारी करने को इच्छुक नहीं । हिमाचल प्रदेश में सहभागी वन प्रबन्धन को टिकाऊ बनाने के लिए, सोच का केन्द्र बिन्दु मौजूदा सोच से हट कर सहभागी संसाधन प्रबन्ध हो जाए तो यह सबसे बड़ा प्रोत्साहन होगा । इससे, अति-संसाधनहीन आदमियों और औरतों की ओर विविध लाभों का निरन्तर बहाव, उनके कानूनी अधिकारों की अपेक्षा के बिना, बढ़ाने के लिए ठीक साधन चुनने के प्रावधान से, और प्रबन्ध अधिकार वी.एफ.डी.एस. को दिए जाने से जीविका उपार्जन की स्थिति सुधरेगी ।

कुटुम्बों की जगह प्रारूपित नियमों द्वारा सभी प्रौढ़ व्यक्तियों को सदस्यता का द्वार खोल कर और इस तरह बड़े बड़े कुटुम्बों के सभी प्रौढ़ लोगों को स्वतन्त्र सदस्यता का अधिकारी बनाकर अधिक से अधिक व्यक्तियों को सम्मिलित करने की क्षमता बढ़ी है । विडम्बना यह है कि मौजूदा 1993 के आदेश में वी.एफ.डी.एस. की कार्यकारिणी में महिला सदस्यों की संख्या 50 प्रतिशत होने का प्रावधान है किन्तु नये प्रारूपित नियमों में यह घटाकर 33 प्रतिशत दी गई है ।

इस समय तो बर्तनदारों को भी अधिकार नहीं कि वे अपने संयुक्त वन प्रबन्ध (जे.एफ.एम.) क्षेत्रों में से घास और ईंधन जैसे फालतू उत्पादों को बेच सकें क्योंकि अधिकार सिर्फ घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही दिए गए हैं ।

यह पुरानी वी.एफ.डी.एस. को सामान्य निधि खड़ा करने में सबसे बड़ी रूकावट बन गई है । सहभागी वन प्रबन्ध नियमों में साफ तौर पर उन्हें ऐसे साधनों से आय बढ़ाने का अधिकार दिए जाने का प्रावधान होना चाहिए ।

समता वादी और सहभागी वन प्रबन्ध का दीर्घकालिक लक्ष्य, व्यक्तिगत अधिकारों को सामुदायिक अधिकारों में बदलने का होना चाहिए । इससे शताब्दियों पहले हुए बन्दोवस्त द्वारा किए गए तोड़-मरोड़ को बेअसर करने, और आवश्यकता पर आधारित शुद्ध सामुदायिक संसाधन प्रबन्ध स्थापित करने में सहायता मिलेगी । यह वांछित है कि, गांव की उन सामुदायिक भूमियों को, जो परम्परा से पशुधन के चराने के काम आती थी (अब कानूनी तौरपर वन अधिसूचित की गई है) भारतीय वन अधिनियम की धारा 28 के अन्तर्गत, उत्तर प्रदेश की वन पंचायतों की तर्ज पर ग्रामीण वन घोषित करने के विचार की छानबीन की जाए । ऐसा करने से उनके नियन्त्रण को वापिस संसाधन उपभोक्ताओं को, दिये जाने के लिए वैधानिक ढांचा उपलब्ध हो जाएगा ।

प्रारूपित नियमों में मुख्य कमी यह है कि इनमें वी.एफ.डी.एस. का, वन विभाग से विवाद होने की सूरत में सहभागी वन प्रबन्ध में आए वनों को धारण करने की अवधि की निश्चितता प्रदान नहीं की गई । विवादों का समाधान वन विभाग की संरचना के अन्तर्गत किया जाता है और वह भी अनुबन्ध के एक पक्ष को अन्तिम निर्णायक बनाकर । हिमाचल प्रदेश के सन्दर्भ में वी.एफ.डी. एस. के लिए वन भूमियों को धारण करने की अवधि की गांरटी एक समस्या बनी रहेगी क्योंकि श्रेणी तृतीय के असीमाङ्कित संरक्षित किस्म की वन भूमि पर वन विभाग का भी क्षेत्राधिकार स्पष्ट नहीं है और यह राजस्व विभाग और वन विभाग के बीच विवाद का विषय बना हुआ है । प्रारूपित नियमों का मानना है कि वन विभाग सहभागी वन प्रबन्धन के लिए असीमाङ्कित संरक्षित वनों और अन्य सरकारी भूमियों जिनपर उसका क्षेत्राधिकार नहीं भी है, सम्बन्धी अनुबन्ध करने के लिए अधिकृत है । पर यह विसंगति आगे चलकर समस्या जनक सिद्ध हो सकती है ।

वी.एफ.डी.एस. गठित करने की विचाराधीन प्रक्रिया इतनी शीघ्रगामी है कि वनों पर आश्रित निर्धन महिलाओं व पुरूषों की जागरूक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए तन्त्रों का अभाव है । ऐसी स्थिति में गांव के बड़े लोगों द्वारा वी.एफ.डी.एस. हथियाए जाने की सम्भावना है जैसाकि बहुत सी वी.एफ.डी.एस. के गठन के समय हुआ है ।

वन-प्रभाग का पुनर्वलोकन

हिमाचल प्रदेश के वन विभाग ने वर्ष 1999-2000 में वन प्रभाग का व्यापक पुनर्वलोकन किया । इस पुनर्वलोकन का लक्ष्य था, मौलिक जानकारी उपलब्ध कराना और सर्वसम्मति पैदा करना जिसके आधार पर विभाग की रचना की जानी है; ताकि वे, सामाजिक व आर्थिक विकास से वन प्रभाग की नीतियों को जोड़ते हुए, वन प्रबन्ध के दावेदारों की आवश्यकताएं पूरी कर सकें और वन-संसाधनों का टिकाऊ प्रबन्धन कर पाएं । वन प्रभाग के पुनर्वलोकन का विश्लेषण और इस पर परिचर्चा से सम्बन्धित विषयों के तीन समूह उजागर होते हैं ।

- जीविका की आवश्यकताओं के लिए वन प्रबन्ध में भागीदारी,
- वन प्रबन्ध में सुधार लाकर उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं की वृद्धि और
- उपरोक्त को पाने के लिए, अभिशासन, कानून और नीति में सांमजस्य ।

टिकाऊ वन प्रबन्ध की दिशा में आधारभूत नीतियों और कार्यक्रमों को परिभाषित करने के लिए उक्त वन प्रभाग पर्यवलोकन द्वारा चार मूल सिद्धान्तों की पहचान की गई है ।

विविध वन मूल्य ऊर्जा, खाद्यान और रेशा से लेकर, सांस्कृतिक मूल्यों और पर्यावरण सेवाओं तक बहुत से वन मूल्यों, जो स्थानीय जीविका और आर्थिक विकास का सम्पोषण (बनाए रखने में सहायता) करने में सहायक हैं, उनको मान्यता प्रदान करनी चाहिए ताकि विभिन्न दावेदारों को निरन्तर लाभ मिलते रहें।

विविध वन दावेदार वनों की देखभाल के लिए नियुक्त सरकारी संस्थाओं के माध्यम से अपनी जीविका के लिए वनों पर आश्रितों से लेकर राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय दावेदारों तक, वनों से जुड़े दावेदारों को मान्यता दी जानी चाहिए । उनके लिए जानकारी और निर्णय लेने की प्रक्रिया तक पहुंच सुनिश्चित करने और वन उपयोग में लाभ कमाने व लागत वहन करने में हिस्सेदारी पर बल देने के लिए अच्छी नीतियां व कार्यक्रम बनाने चाहिए ।

बदलते हालात क्योंकि हिमाचल में और बाहर भी आर्थिक, पर्यावरणीय, सामाजिक व संस्थागत हालत तेजी से बदल रहे हैं अत: नीतियां और कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए कि वे नियमित पुनर्वलोकन और हालात के अनुसार बदलाव के योग्य हों । उनमें एक सतर्क सोच भी शामिल हो जिससे महत्वपूर्ण वन सम्पदा का संरक्षण सम्भव हो ।

मि. बासुदेब, मनिएरा के आसपास के तिन के.एफ.सि.एस. के गार्ड

एस.एफ.एम. (टिकाउ वन प्रबंध) की ओर बदलाव के लिए एक अगुवाई-संस्था समन्वय के लिए आवश्यक यह इसलिए आवश्यक है कि हर एक दावेदार टिकाऊ वन प्रबन्ध की ओर हो रहे बदलाव के लिए, मान्य अधिकृत विभाग होने के नाते, वन विभाग से समन्वय की भूमिका निभाने की आशा करता है अत: उसे इसके लिए उपयुक्त सहारा देना जरूरी है । एक ऐसी नियमित, समतावादी, सहभागी पद्धति भी आवश्यक है, जिसके माध्यम से दावेदार स्वत: मिल सकें, महत्वपूर्ण योजना विषयक मामलों पर चर्चा कर सकें, वैकल्पिक समाधान निकाल सकें और वन विभाग द्वारा दी गई मदद से भागीदारियां बना सकें । अतत: इन सिद्धान्तों का आशय है वन दावेदारों की वास्तविक और सबको स्वीकार्य भूमिकाओं का नये सिरे से मोल-तोल करना । पहले से एक मान्य आवश्यकता होते हुए भी यह तब तक नहीं हो सकता जब तक एस.एफ.एम. के बारे में सहभागी नीति प्रक्रिया के आधार पर सान्झी सोच न बने ।

सम्भवत यह नये सिरे से किया गया मोल-तोल आने वाले वर्षो में महत्वपूर्ण संस्थागत परिवर्तन के आरम्भ का उद्घोष होगा, एवं वन प्रभाग

पुनर्वलोकन का मुख्य परिणाम भी । वानिकी के विकेन्क्रीकरण की प्रक्रिया, स्थानीय जटिलताओं से निबटने के लिए जरूरी है । परन्तु यथेष्ट केन्द्रीयकरण भी, प्रदेश के अन्दर व बाहर-नीति सामंजस्य के लिए वांछित है ।

वन प्रभाग पुनर्वलोकन ने उन बहुत से तत्वों को मान्यता दी है जो पी. एफ.एम. या सामान्य वन प्रबन्ध को राज्य और शामिल समुदायों के लिए टिकाऊ और लाभदायक विकल्प बनाने में सहायक हो सकते हैं । यह इस सच्चाई को भी उजागर करता है कि यह तभी हो सकता है यदि वन विभाग के भीतर ही नीति और संस्थागत बदलाव आ जाए परन्तु इसमें इस बात का जिक्र नहीं है कि कौन से तत्व हैं जो ऐसे बदलाव को लाने के लिए जिम्मेदार हो सकते है ।

के.एफ.सी.एस. का भविष्य

20 मार्च 2000 को हि.प्र. सहकारी सभा विकास संघ ने धर्मशाला में एक दिवसीय परिसंवाद गोष्टी का आयोजन किया, जिसमें चर्चा का विषय था "वन सहकारी सभाओं के सामने चुनौतियां व समस्याएं" इसकी अध्यक्षता माननीय सहकारिता मन्त्री हि.प्र. श्री रिखी राम कौण्डल ने की, गोष्ठी में वन विभाग का प्रतिनिधित्व अरण्यपाल कांगड़ा ने और सहकारिता विभाग का प्रतिनिधित्व सहायक पंजीकार कांगड़ा ने किया । सारे जिला से आए के.एफ.सी.एस. के बहुत से प्रतिनिधियों ने भी इसमें भाग लिया । गोष्ठी की समाप्ति तक यह सर्व सम्मति बन चुकी थी कि के.एफ.सी.एस. के साथ बुरा व्यवहार किया गया था । सहकारिता विभाग ने माना कि वह के.एफ.सी.एस. के लिए संघर्ष करने में अयोग्य रहा । अत: अतिरिक्त पंजीकार (सहकारिता विभाग) की अध्यक्षता में, के.एफ.सी.एस. को पुनर्जीवित करने के विषय पर चर्चा करने के लिए एक समिति का गठन किया गया ।

वन विभाग ने यह माना कि के.एफ.सी.एस. सहभागी वन प्रबन्ध संस्थाएं ही हैं और अपनी वर्तमान क्षमता के बूते पर जिले के 9 प्रतिशत वन क्षेत्र अथवा भूमि का प्रबन्ध कर रही हैं और यह भी माना कि सहभागी वन प्रबन्ध योजनाओं में मामूली परिवर्तन करके, वे अपनी भूमिका निभाना जारी रख सकती थी ।

के.एफ.सी.एस. ने माना कि उनके उप नियम पुराने समय से चले आ रहे हैं और उनमें समानता, लिगं सम्बन्धी चिन्ताओं और विस्तृत सदस्यता जैसे तत्वों को शामिल करना आवश्यक है । और वे यह परिवर्तन तत्काल करने के लिए मान गए कुछ आवश्यक परिवर्तन निम्नलिखित हैं ।

वन क्षेत्रों का युक्ति सम्मत पुनर्गठन पिछले पचास वर्षो में हुई जनसंख्या वृद्धि व संचलन से के.एफ.सी.एस. के अन्तर्गत आने वाले वनों पर दबाव बढ़ा है । जो सभाएं पहले दो या तीन टीकों तक सीमित थी उनके अन्तर्गत अब 10 से 15 गांव आते हैं । उनके क्षेत्र काफी बड़े और प्रबन्ध के लिए कठिन हैं ।

खुली सदस्यता सदस्यता केवल अधिकार स्वामियों तक सीमित न रखते हुए सभी वन उपभोक्ताओं के लिए खुला रखना । उप-नियमों में विशेष प्रावधान के द्वारा महिलाओं को जोड़ने का प्रयास ।

पारदर्शिता प्रबन्ध समितियों के केन्द्रीकरण और आम सदस्य की सहभागिता न होने के कारण सभाएं पारदर्शिता-विहीन हो गई हैं, जिसका सुधार जरूरी है ।

वनों पर कानूनी नियन्त्रण यदि इन वन सभाओं को प्रभावकारी ढंग से अपने वनों का प्रबन्ध करना है तो दीर्घकालिक व कानूनी तौर पर स्पष्ट भूमिधारण करने की पद्धति की आवश्यकता है जिसमें उनकी दावेदारी भी सुनिश्चित हो ।

के.एफ.सी.एस. की भूमिका पंचायतों की तुलना में :-

इस पर विचार करना आवश्यक है कि यह वन सहकारी सभाएं विकेन्द्रीकृत अभिशासन की इकाई पंचायत से कैसे तालमेल बिठाएंगी और लाभान्वित होंगी । जबकि 'वन आधारित उपभोक्ता समूह-वानिकी' की अपनी शक्ति है, पंचायतों के समन्वय और मदद से यह और शक्तिशाली बनेंगी । सहभागी वन प्रबन्ध का हिमाचल प्रदेश में औचित्य तभी सिद्ध होगा जब वन सहकारी सभाओं को पुनर्जीवित किया जाएगा । वास्तविक सहभागी वन प्रबन्ध, सभी लाभों समेत तभी अस्तित्व में आएगा जब निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो जाए ।

हिमाचल में सहभागी वन प्रबन्ध के इतिहास से सबक

सामान्य विषय-वस्तु

तकनीकी तौर पर हिमाचल प्रदेश में 37,600 वर्ग कि.मी. सरकारी वन क्षेत्र (कुल भौगोलिक क्षेत्र का 67 प्रतिशत जिसमें एक तिहाई ही वास्तविक तौर पर वनों तले है) के प्रबन्ध का भार लगभग 4400 विभिन्न स्तरों के वन कर्मियों पर है । वास्तव में गांव समुदायों (जो हि.प्र. की कुल 55,00,000 जनसंख्या का 91 प्रतिशत है) के दैनिक कामकाज का वनों के उपभोग पर राज्य में विशेष प्रभाव पड़ता है । वन, कृषि प्रणालियों जिनमें उद्यान विकास, पशुधन प्रबन्ध सम्मिलित है, का अनिवार्य अंग है । वे गांव समुदायों को ईंधन की लकड़ी, कृषि औज़ारों के लिए लकड़ी, चारा, जैव खाद, इमारती लकड़ी, खूंटे व बाड़ लगाने के लिए सामान व भोजन मुहैया कराते हैं । अध्ययनों से पता चलता है कि वन, मूल्य के हिसाब से क्रमशः 19 प्रतिशत, 20 प्रतिशत और 26 प्रतिशत अन्न, फल व सब्जियां उपलब्ध कराते हैं । (गुलाटी 1996) इसके अतिरिक्त वे पशुपालन की जरूरतों के लिए 49 प्रतिशत व ग्रामीण जनता के लिए 90 प्रतिशत घरेलु ऊर्जा का योगदान देते हैं । वन विभाग के आंकलन के अनुसार हिमाचल प्रदेश के वनों से ठोस उत्पादों के प्रतिवर्ष निष्कासन का मूल्य 10 अरब रूपये ठहरता है ।

सहभागी वन प्रबन्ध के लिए किए गए के.एफ.सी.एस. (1940) से लेकर हाल की योजनाओं तक सारे पूर्व प्रयासों में कुछ सांझी विषय वस्तु हैं यह सान्झी विशेषताएं निम्नलिखित हैं ।

- सहभागी वन प्रबन्ध के लिए प्रयास एक अस्थायी योजना या एक समयबद्ध परियोजना के रूप में होते हैं ।
- नष्ट प्रायः वनों के संरक्षण व प्रबन्ध के लिए, वनरोपण व रकबे बन्द करने के समान सुझाव के साथ वन विभाग गांव समुदायों को अल्पकालिक ग्रामीण संस्थाएं बनाने की आज्ञा देता है ।
- गैर वन आधारित सम्पदा खड़ा करने (यथा-कुएं, पैदल मार्ग) और आरम्भ के 2 या 3 वर्षों के लिए वन रोपण के कार्य करने में अन्तनिहित मजदूरी के

अवसर मिलना एक मुख्य लाभ है । इस समय के दौरान बन्द किए गए रकबों में काफी सुधार दिखाई देता है और घास के रूप में लाभ भी होता है । परन्तु रोपित पेड़ों को 8 से 10 वर्षों का समय विकसित होने के लिए चाहिए । पास के सीमाङ्कित संरक्षित वनों पर दबाव, गैर वन सम्पदा खड़ा करने और मजदूरी उपलब्ध कराने से अस्थायी तौर पर कम किया जाता है ।

- सांझेपन की परिभाषा बड़ी स्पष्ट है : गांव की समितियां (बी.डी.सी. वी. एफ.डी.सी., गांव परिस्थितिकी विकास समिति) वन विभाग से अति महत्वपूर्ण, (संरक्षण) की भूमिका अपने हाथ में ले लेती हैं । अवैध कब्जे हटाना, खुले तौर पर प्रयोग में आने वाला और विवादित चरानों को बन्द करना, घास व तराशी हुई शाखाओं का वितरण, झगड़ों का निपटारा करना और अन्य अनिवार्य काम भी ये समितियां ले लेती हैं । तथापि इन संस्थाओं को कानूनी मान्यता, उनका प्रबन्धित भूमियों पर नियन्त्रण, अपराधियों को जुर्माना करने की शक्ति, वनों का प्रबन्ध करने व मुख्य दीर्घकालिक लाभों पर (इमारती लकड़ी, बिरोजा, खैर और अन्य बहुमूल्य उत्पाद) वन विभाग का नियन्त्रण है ।

आज दिन तक मुख्यधारा वन प्रबन्ध प्रणाली वन भूमि को राज्य की सम्पति के रूप में परिभाषित करती है । वन विभाग हिमाचल प्रदेश के 66 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र का भू-स्वामी है ।

दूसरी ओर गांव समुदाय वनों को केवल दोहन किए जाने वाला संसाधन मात्र नहीं मानते, वे इसे उनके जीविका व अस्तित्व का सार तत्व मानते हैं । इस बात पर, सदियों पुरानी सामुदायिक वन प्रबन्ध व उपभोग की पारम्परिक प्रणालियों द्वारा बल दिया गया है, जो पहुंच और निकासी के पारम्परिक मान्यता प्राप्त अधिकारों पर आधारित हैं । जिनका प्रत्येक समुदाय के उपभोग समूह सम्मान करते और स्वीकारते हैं ।

इन प्रणालियों का, जिनपर सही वन प्रबन्ध वास्तव में आधारित किया जा सकता है, वन विभाग के कार्य योजना दस्तावेजों में या दूसरे योजना और क्रियान्वयन रचना तन्त्रों में जिक्र नहीं है । बहुत से वन रक्षक मानते हैं कि

जब उनका नये कार्यक्षेत्र में स्थानान्तरण होता है, तो गांव समुदाय ही उन्हें उनके नियन्त्रण के अधीन वन भूमियों की स्थिति ओर सीमा स्तम्भों के बारे में जानकारी देते हैं । वास्तव में उनके कार्यक्षेत्र बहुत बड़े होने की सूरत में, वनों में अवैध कटान व लकड़ी की तस्करी की सूचना भी उन्हें वन उपभोक्ताओं से ही मिलती है ।

सहभागी वन प्रबन्ध का प्रयोग करने के पीछे आशय था, एक नया रास्ता विकसित करना जिसपर वानिकी विकसित हो सके, परन्तु दु:खद बात यह है कि यह घने जंगल में एक संकरा पैदल रास्ता बन के रह गया । हिमाचल प्रदेश का वन विभाग आजकल, सहभागी वन प्रबन्ध को, विदेशी दान राशियां आकर्षित करने के लिए एवं कुछ ग्राम समुदायों में, वन सम्पदा से बरतरफ करने और वनों तक पहुंच व नियन्त्रण के अभाव में संचित आक्रोश से राहत दिलाने के लिए साधन के रूप में प्रयोग में लाता है । दुर्भागय वश वन विभाग को पी.एफ.एम. के प्रयोग से सीख सबक वानिकी प्रबन्ध प्रणाली में शामिल करना व्यवहारिक नहीं लगता ।

वन विभाग और हिमाचल प्रदेश के लोगों का हित चाहने वाले अथवा प्रदेश के वनों के भविष्य से चिन्तित लोगों के लिए विचारणीय प्रश्न :-

- हिमाचल प्रदेश में टिकाऊ वन प्रबन्ध के भविष्य के लिए इन अगुआ प्रयोगों से क्या सबक और अनुभव प्राप्त होते हैं ?
- के.एफ.सी.एस. का अपना भविष्य क्या है ?

हिमाचल प्रदेश में टिकाऊ वन प्रबन्ध के भविष्य के लिए सबक

टिकाऊ वन प्रबन्ध को सफल बनाने के लिए मौजूदा सहभागी वन प्रबन्ध के प्रयासों से बढ़ कर कुछ करने की जरूरत है और कुछ मौलिक परिवर्तन वांछनीय हैं ।

सहभागी वन प्रबन्ध को मुख्यधारा में लाना

के.एफ.सी.एस. योजना को पुन: अधिसूचित करने से चूकने और सयुंक्त वन प्रबन्ध और सान्झी वन योजना से प्राप्त अनुभवों से लगता है कि वन विभाग इन योजनाओं के क्रियान्वयन को मात्र ऐसे प्रयोगों और प्रयासों के रूप

में देखता है कि यह बताया जा सके कि सहभागी वन प्रबन्ध सम्भव है । इन सब आरम्भिक प्रयोगों से प्रतीत होता है कि यह अभी तक वन विभाग के मुख्यधारा वन प्रबन्ध के हाशिए पर किए गए प्रयास हैं और इसमें न कोई अन्तनिहित टिकाऊपन भी है । सहभागी वन प्रबन्ध को अब मुख्यधारा वन प्रबन्ध का स्थान देना चाहिए न कि एक अलग से किए गए प्रयोग की स्थिति में इसे बनाए रखना । सहभागी वन प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए जिससेा घनी जनसंख्या और वन दोनों, के अन्तरप्रभावों को दृष्टि में रखते हुए वन भूमियों का प्रबन्ध किया जा सके । वन विभाग को गांव समुदायों को, पी.एफ.एम. नियमों और वन अधिनियम से प्राप्त शक्तियों से लैस, प्रबन्धकों के रूप में देखना चाहिए । पी.एफ.एम. को ऐसी वन प्रबन्ध प्रणाली का रूप लेना चाहिए, जिसके अन्तर्गत विवर्णित वन क्षेत्र लम्बे समय के पट्टों पर समुदायों को हस्तांतरित किए जाएं और उसकी कार्य योजनाओं में वन प्रबन्ध की अवस्थाओं का स्पष्ट वर्णन हो ।

वन भूमि के उपयोग में परिवर्तन

हिमाचल प्रदेश में सिद्धान्त रूप से वन विभाग पेड़ उगाने को वन भूमियों का सर्वोत्तम उपयोग मानता है। तथापि इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि "वन भूमि की आधुनिकतम कानूनी परिभाषा परिस्थितिकी" को आधार मानती है और उसके अनुसार वन भूमि में वनरोपण अनिवार्य रूप से करने की बात नहीं की गई है । वन विभाग के आंकड़ों के अनुसार (भले ही इनका जिक्र राजस्व विभाग के अभिलेखों में नहीं है) 37,600 वर्ग किलोमीटर कानूनी तौर पर वन के रूप में वर्गीकृत है और यह राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 67 प्रतिशत बैठता है । इसमें से 37,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वन विभाग के अधीन है और उसमें में से

मनियारा में उपजाऊ कृषियोग्य भूमि है । मनियारा के.एफ.सी.एस. इस 'कुल' के वार्षिक प्रबन्धन में हाथ बटाती है । जिसकी सिंचाई इस 'कुल' के द्वारा होती है

भी 12,500 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वास्तव में वनों तले है (वन घनत्व 10 प्रतिशत से कुछ अधिक है) और मात्र 9600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में घने वन हैं (भाटिया 2000) 11,300 वर्ग किलोमीटर वन भूमि पेड़ उगाने योग्य नहीं क्योंकि यह समुद्रतल से 3000 मीटर से 4000 मीटर ऊंचाई वाले क्षेत्र है और या तो यह अल्पाइन चरागाहें है या बर्फ से ढके हैं । इसका अर्थ है कि 24,500 वर्ग किलोमीटर वन भूमि ही वन उगाने योग्य हैं और इसके आधे के बराबर ही वनों तले है । बहुत सी वन भूमि में असीमाङ्कित सरक्षित वन है और वह पारम्परिक सार्वजनिक भूमि है, जिसे सरकार ने 1970-80 के दशक में अधिगृहीत कर लिया । आज भी इनमें बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जिनपर खुले चरान का दबाव है या झाड़ियों से भरी पड़ी चरागाहें हैं । इनमें से बहुत से क्षेत्रों को बन्द करने या उसमें वनरोपण के लिए प्रतिवर्ष प्रयास किया जाता है । पर पेड़ों के जीवित बचे रहने की प्रतिशतता-विहित कारणों से बहुत कम है ।

वन विभाग को यह महसूस और स्वीकार करना चाहिए कि पहाड़ों के विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय जीविकोपार्जन के लिए सहायक विविध प्रकार का भूमि उपयोग प्रचलित है । इस विविधतापूर्ण भूमि उपयोग का विनाश किया जा रहा है और संसाधनों पर निर्भर समूहों को एकल प्रजाति वन लगाकर और प्रबन्ध के गलत नुस्खे सुझाकर वनों से बरतरफ किया जा रहा है । पहाड़ों में चरागाहों वृक्ष रहित खुली वन भूमियों और अन्य को पहाड़ी भूमि के कुछ भाग का सदुपयोग मानना चाहिए । कार्ययोजनाओं और वन सुधार के लिए वन वैज्ञानिक नुस्खों इन में विभिन्न प्रबन्ध प्रणालियों को प्रतिबिंबित करना चाहिए ।

वन भूमियों का पुनवर्गीकरण

किस वन के प्रबन्धन एवं उपयोग की प्राथमिक जिम्मेदारी किसकी है, इस आधार पर वनों का पुनः वर्गीकरण करना लाभदायक और आवश्यक भी है । वर्गीकरण के लिए एक सुझाव निम्नलिखित है ।

- **सामुदायिक वनः** वह वन जिनका प्रबन्ध स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति में उपयोग के लिए (तकनीकी, कौशल और सहायता वन विभाग से प्राप्त) सहभागी वन प्रबन्ध के सिद्धान्तों पर पूरे तौर पर समुदायों द्वारा किया जाए। इनकी निम्नलिखित किस्में हो सकती हैं ।

(क) **आपूर्ति वनः** जिनका प्रबन्ध ईधन की लकड़ी, चारा, इमारती लकड़ी व गैर इमारती लकड़ी-वन उत्पाद की आपूर्ति के लिए किया जाए । स्थानीय समुदायों के लिए जीविका के साधनों का विकास, तकनीकी, वित्तीय और विपणन सहायता द्वारा किया जाना चाहिए । इसे सुनिश्चित करने के लिए निकासी, प्रसंस्करण और निर्यात-नियमों में आवश्यक परिवर्तन करना पड़ सकता है ।

(ख) **संरक्षण वनः** गांव के आस-पास के वह क्षेत्र जहां प्राथमिक उद्देश्य, भारी भूक्षरण से उन्हें बचाना, जलागम क्षेत्र प्रबन्ध और जैव विविधता का संरक्षण है । लम्बे अरसे के उपरान्त यह सब क्षेत्र वन संसाधन बन जाएंगे ।

राज्य वन (सरकारी): मुख्यता यह वन विभाग द्वारा प्रबन्धित वन होंगे । यह क्षेत्र राष्ट्रीय परिस्थितिकी के सुधार में सहायक होंगे-इमारती लकड़ी व उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे । यह निम्नलिखित दो प्रकार के हो सकते है:

(क) **आपूर्ति वनः** वन क्षेत्र जिसमें समुदायों द्वारा कम से कम निकासी की जाएगी और इनसे मुख्यता राष्ट्र की इमारती लकड़ी व इमारती लकड़ी के अतिरिक्त वन उत्पाद, की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाएगी ।

(ख) **संरक्षण वनः** एल्पाइन क्षेत्र और इर्द-गिर्द के संरक्षित क्षेत्र जहां गांव समुदायों की निर्भरता नाम मात्र हों, और सहभागी संरक्षण प्रबन्ध के द्वारा जैव विविधता के तत्वों को बनाए रखना सुनिश्चित किया जा सके । हिमालय के प्राकृतिक आवासों का परिरक्षण और उसके लाभों, यथा जल और कार्बन स्थिरिकरण का लाभ राष्ट्र को मिलना सुनिश्चित हो सके ।

व्यक्तिगत अधिकारों का सामुदायिक अधिकारों में बदलना

व्यक्तिगत अधिकारों को स्पष्ट तौर पर व्यवस्थित करना कठिन होता है, विशेषकर यदि वह व्यवस्थातन्त्र समुदायों पर बाहर से लागू किया जाए । एक महत्वपूर्ण सबक जो के.एफ.सी.एस. के प्रयोग से उभर कर सामने आता है, वह यह है कि यदि वन संसाधन सामुदायिक सम्पति हो और निकासी सामुदायिक अधिकार; और यदि सामुदायिक संस्थाएं समानतावादी हों और वनों पर निर्भर समूहों को सहायक हों; तो (टिकाऊ) निकासी की ओर ले जाने वाली आन्तरिक व्यवस्था सम्भव है । वन विभाग की भूमिका बदल कर बाहर से अनुश्रवण और नेतृत्व प्रदान करने के साथ झगड़े निपटाने की हो जाएगी ।

टिकाऊ वन-आधारित जीविकोपार्जन को सशक्त करना

जब तक कि वन छोटी अवधि में लाभ देने न लगें और इस तरह टिकाऊ जीविकोपार्जन के साधनों को सशक्त न कर पाएं - समुदायों की सहभागी वन प्रबन्ध में कोई रूचि नहीं होगी । लोगों को ऐसी गतिविधियों में सम्मिलित करना बहुत कठिन काम है । जो उन प्राकृतिक संसाधनों को, जिनपर गांव समुदाय निर्भर हों, पुनः स्थापित करने और उनमें नया जीवन भरने में सहायक हो । इस कठिन काम का सामना हर संरक्षण-अभिमुख-प्रयास में करना पड़ता है । पिछले कुछ वर्षों में, बहुत से सार्वजनिक सम्पदा-संसाधनों पर निर्भरता और उनमें रूचि भी कम हुई है । सार्वजनिक सम्पदा संसाधनों से जुड़ाव और अन्ततः उन पर सामुदायिक नियन्त्रण को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक उपभोक्ता समूह को गतिशील बनाना चाहिए । वास्तविक लाभबन्दी का भी सामान्यतः आर्थिक आयाम होता है, और यह विचाराधीन संसाधन/सम्पदा से होने वाले लाभों में दिखने वाली वृद्धि से प्रेरित होती है । इसलिए इन लाभों को लम्बी और छोटी दोनों अवधियों में सुनिश्चित करना चाहिए । अनिच्छुक-निहित-स्वार्थ समूहों को संसाधन उपयोग प्रक्रियाओं पर पुनः मोल-तोल करने और लम्बी अवधि के निवेश सम्बन्धी झगड़ों के समाधान हेतु प्रेरित करने के लिए सामान्य तौर पर ठोस लघु-अवधि में लाभ होने जरूरी होते हैं ।

वन-आधारित जीविकाओं की सोच के द्वारा अपने सभी आरम्भिक प्रयासों में उत्पादन आधारित उपक्रमों के द्वारा बढ़े हुए लघु अवधि लाभों और स्पष्ट नगद आय, चिन्हित दावेदारों को प्रदर्शित करने पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है । इससे प्रत्येक दावेदार को सम्बन्धित गतिविधि को आगे बढ़ाने, मतभेद निपटाने और अपने को एक समूह में संगठित करने की रूचि पैदा होगी। एक बार जब समूह टिकाऊ आय किसी संसाधन विशेष के उपयोग से कमाने लग जाएं तो संसाधन के संरक्षण, वृद्धि और प्रबन्ध में भी रूचि पैदा हो जाएगी। इस तरह से वन आधारित जीविकाएं लोगों को पारिस्थितिकीय पुनरूद्धार और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्ध के लिए संगठित कर सकती है ।

लोगों की संस्थाओं की भूमिका की युक्तिकरण

वर्तमान परिदृश्य में वन विभाग या सरकार द्वारा, सहभागी वन प्रबन्ध के लिए संगठित की गई लोगों की संस्थाए इतने प्रकार की हैं कि वह भ्रमित करती हैं । राज्य ने, गांव वन विकास सभाएं (वी.एफ.डी.एस.), गांव-पारिस्थितिकी विकास सभाएं (वी.ई.डी.एस.), गांव विकास समितियां (वी.डी.सी.) संगठित की हैं और विशेष बात यह कि वनों को 14 लाईन विभागों में प्रबन्ध के लिए रख दिया है और इसका पर्यवेक्षण पंचायतों के हाथ में रखा है। यह संस्थाएं उन सब पारम्परिक स्थानीय संस्थाओं से भिन्न हैं जो वन प्रबन्ध में पहले महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी । जैसे देवता समितियां, सुधार सभाएं एवं महिला मण्डल इत्यादि । जे.एफ.एम व पी.एफ.एम. के अन्तर्गत योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए संगठित संस्थाओं को अभी तक सामान्य और महत्वहीन भूमिकाएं व शक्तियां ही आंबटित की है । परन्तु इन संस्थाओं ने ऐसे समय में जब ग्राम समुदाय अपने आप को विषयक विभागों से दूर रखने लगे हैं; लोगों को इन कार्यों में सम्मिलित करने में अपनी योग्यता दिखाई है । जैसा नमूना के. एफ.सी.एस. ने प्रस्तुत किया है, वैसे स्थानीय संस्थाएं वनों के टिकाऊ प्रबन्ध में बहुत बड़ी भूमिका निभा सकती हैं पर इन्हें स्पष्ट और केन्द्रीय भूमिका देनी होगी । वनों के बारे में, वनों सम्बन्धी सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य के रहते, यह परिवर्तन लाने में अगुवाई वन विभाग को ही करनी होगी । इसके लिए वन विभाग को स्पष्ट मील पत्थर और पुनर्व्यवस्था के संकेत इन संस्थाओं को बताने होंगे और वह कार्यक्रम जिनपर सहमति हो जाए गांव समुदायों को सौंपने होंगे ।

निष्कर्ष

हिमाचल प्रदेश का वन प्रबन्ध का इतिहास बताता है कि न तो वन विभाग और न ही अन्य सरकारी संस्थाएं स्वत: बदलती हैं । हिमाचल प्रदेश में गत 150 वर्षो से कोई महत्वपूर्ण विरोध या विद्रोह, वनों के अपहरण के विरूद्ध नहीं हुआ । आधुनिक विकास कार्य-क्रम, 1970 से 1990 तक सरकारी नौकरियों की भरमार और व्यापार व विपणन अवसरों के खुलने से ऐसे दबाव खप गए

हैं । बड़े पैमाने पर केन्द्र सरकार द्वारा निवेश किए जाने से वन आधारित जीविकाओं का स्थान तृतीय क्षेत्र के विकल्पों ने ले लिया है ।

क्योंकि भारत के आर्थिक परिदृश्य में, उपलब्ध उपदानों में कटौती करने से, आकस्मिक परिवर्तन आ रहा है, अब अर्थशास्त्र सरकार को विवश करेगा कि वह वनों और उनके आर्थिक मूल्य की ओर ध्यान दे और आर्थिक एवं परिस्थितिकीय हितों के लिए सहभागी वन प्रबन्ध में बड़े पैमाने पर गांव समुदायों को जोड़ने की योजना बनाए । इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए, और बदली हुई नीतियों, संस्थाओं और क्रियान्वयन विधियों को गतिशील बनाते हुए हिमाचल सरकार को इस बदलाव के प्रबन्धक की भूमिका निभानी चाहिए ।

बहुत से राज्यों ने एक दूसरा रास्ता चुना है । निजी उद्योगों को सुविधाकर्त्ता के रूप में लाया गया है और निजी लाभों को, वनों के सुधरे हुए आर्थिक प्रबन्ध की दिशा में-अग्रदूत बनाया है । इससे दो समस्याएं खड़ी हो गई हैं । सभी समुदायों, विशेषकर वन उपभोक्ताओं की कीमत पर कुछ ही लोगों को विशाल आय कमाने योग्य बनाना और आर्थिक तौर पर उत्पादक परन्तु परिस्थितिकी की दृष्टी से विनाशक वन उपयोग प्रक्रियाएं प्रचलन में लाकर दीर्घकालिक सम्पदा आधार की नींव नष्ट करना । जबकि यह तरीका केवल सरकारी आपूर्ति वनों में अपनाया जा सकता है, ज्यादातर वनों में स्थानीय समुदायों को उपलब्ध जीविका विकल्पों का विकास करना चाहिए यह कार्य टिकाऊ वन प्रबन्ध में, उनकी दावेदारी खड़ी करने और उसे बढ़ाने में, अग्रदूत की भूमिका निभाएगा । इससे स्थानीय आय खड़ी होगी और स्वत:- जारी रहने वाली और स्वत: नियामक वन प्रबन्ध प्रक्रियाएं भी अस्तित्व में आएंगी ।

हिमाचल प्रदेश को अब इन दो मार्गों में से एक को चुनना होगा । इसी निर्णय से यह तय होगा कि हिमाचल में वनों का और वनों पर निर्भर लोगों का भविष्य क्या होगा ।

End Notes

1 The state property in wastes was quietly announced by the Board of Administration in 1852, 26 years before the statutory enactment of the Forest Act of 1878. The Board proposed: "....after defining the village boundaries and allowing such reasonable extent of land as may suffice for the wants of the communities being included in each area, to declare lands beyond these boundaries government property."

2 Anderson. Final Report of the Settlement of Kangra District; Article 15 of Kangra Forest Record of Rights.

3 Para. 10.6 of the Garbett Commission's report, referred to in Rawal (1968) Volume I

4 Punjab Govt. notification No. 1522-C(S) dated 13.8.1938.

5 Letter No.568-Ft. dated 27.2.1940 from Deputy Secretary to Punjab Government, Development Department to the Chief Conservator of Forests, Punjab.

6 Vide Govt. letter No. 157/Ft. dated 18.1.1941.

7 Gov't. letter No.2742-Ft. dated 26.9.1941, from Secretary to Punjab Government, Development Department.

8 Memo No.238/Misc. dated 28/10/89, from the office of Conservator Forests, Dharamsala.

9 Traditional water-powered mills for grinding grain

10 Speech of His Excellency, the Governor of Punjab, at a special durbar at Palampur, 1941

11 Letter No.1664 dated 17th May 1949

12 From Registration Report of Bhagotla KFCS by the Assistant Registrar Co-ops Societies, Dharamsala, dated 29.6.1942

13 Report of Sh. M. Gurdas Mohan, E.A.C. Forests, dated 10.4.1942, sent to the Divisional Forest Officer, Kangra Forest Societies Division

14 Memo No 9653-D dated 3.11.1942 from Additional Registrar Cooperatives Department, Dharamsala to Divisional Forest Officer, Kangra Forest Societies Division

15 Kangra Village Forestry Scheme Rules, quoted in Rawal (1968) Volume 2

16 Inspection Note dated 9.9.54 of the Deputy Registrar (Development), Co-op Societies, Punjab

17 Persons entitled to a right over the land or trees in a protected forested which are the property of another, for example, the government.

18 Letter No.1664 dated 17th May 1949, from the Conservator of Forests, North East Punjab, Shimla

19 Notification of the Kangra Village Forest Scheme, vide letter No. 568-Ft. dated 27/2/1940 from the Deputy Secretary of the Punjab Govt. to the Chief Conservator of Forests, Punjab.

20 Vide Para. VI (v) of Annexure III (a) to the Code of Procedure for KFCS: "standing orders regarding procedures to be adopted in the forest societies of Kangra District in forest offences under section 68 of the Indian Forest Act and other allied matters".

21 In Bahnala KFCS, in May 1995, a fallen mango tree was auctioned by the managing committee to a member. The FD raided and seized the tree on the charge that the KFCS had no powers to auction trees. The tree was then auctioned by the FD. The KFCS has now filed a case against this action of the FD in court and has demanded that the FD produce evidence to support its statement that the KFCS stand dissolved.

22 "These rates do not comply with the compensation rates laid down by the DFO concerned and nor is the amount deposited in the Treasury." Internal FD Notification, source unknown.

23 Note dated 1.7.1955 from Sh. Bhim Sen Sachar, Chief Minister, Punjab, reproduced in Rawal (1968) Volume 2, pp. 125-26

24 According to interviews with senior retired Cooperatives Department officials.

25 Referred to in a report appearing in the newspaper Jansatta, dated 27.9.1996

26 HP Govt. letter no. COP-F/S/-29/89 dated 6.10.1990

27 Letter No. 4-55/70-SF dated 31/3/1973 from Forest Secretary to CCF, FD, HP. The same notification however increased the inspection fees payable by the KFCS as follows:
for first Rs 1,000 surplus income of the KFCS = 10 %
for the next Rs 4,000 = 12 %
for the next Rs 5,000 and above that = 15 %

28 Reported in the daily newspaper, Dainik Tribune, 5/2/1996.

[29] Question No. 799, taken up and answered by the Forest Minister in the HP Legislative Assembly on 5/4/1994.3

[30] The union has collected funds from all its members and hired the services of an experienced advocate in the High Court Shimla. At the time of writing, the petition has been filed.

[31] From Choudhary, CF Dharamsala, Parawise Comments on the Report on 'Revival of Cooperative Forest Societies in District Kangra and Cho Reclamation and Soil Conservation Societies of Una District', by the HP Institute of Public Administration. (undated document, probably 1990)

[32] Ibid.

[33] Ibid.

[34] Vide his letter (No.F.9-45/3810, dated 12.6.1989) to all DFOs, and subsequently through Range Officers Jwalamukhi (15.7.1989), to all KFCS of Dehra Division.

संदर्भिका

निम्नसंदर्भ मूल पाठ में अनिवार्य रूप से उपलब्ध नहीं

एहल.आर (1993) ए केस स्टडी ऑन वीकर सैक्शन्ज़ एण्ड वोमैन आई.जी.डी. पी. देहली–परिवर्तन

एण्डर सन.ए. (1975) रिपार्ट ऑन फॉरेस्ट सैटलमैन्ट–कांगड़ा डिस्ट्रिक 1887 शिमला एच.पी. फॉरेस्ट डिपार्टमैन्ट

एनॉन (1908 रिप्रिन्टिड इन 1991) इम्पीरियल गैजेटियर ऑफ इण्डिया प्रोविंसयल सीरीज़ पंजाब (वॉल्यूम 1 एण्ड 2) देहली एटलांटिक पब्लिशर्ज़ एण्ड डिस्ट्रीब्यूर्श्ज

भाटिया.ए. (इडी)(2000) पार्टिसिपेरी फॉरेस्ट मैनेजमैन्ट : इम्पलीकेशंज़ फॉर पालिसी एण्ड हयूमन रिसोर्सिज़ डिवैलपमैन्ट इन हिन्दुकुश–हिमालयज़ वॉल्यूम 4 इण्डिया काठमाण्डू : इसीमोड

चरक एस.एस.(1978) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ हिमालायान स्टेट्स हिमाचल प्रदेश (वॉल्यूम 1 एण्ड 2) न्यू देहली लाईट एण्ड लाइफ पब्लिशर्ज़

डोली ज.एम. (1915) पंजाब सैटलमैन्ट : लाहौर, पंजाब, सुपिरिन्टेडेटं गवर्नमैन्ट प्रिन्टिग

जी.ओ.आई (1991) इण्डियन फॉरेस्ट एक्ट, 1927 न्यू देहली ऑरिएण्ट लॉ हाऊस ।

गुहा.आर. (1989) द अनक्काएट बुड्ज़ : ऑक्सफोर्ड ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस

गुहा.आर. गाडगिल,एम (1992) दिस फिशर्ड लैण्ड : एन इकौलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया न्यू देहली ऑक्सफोर्ड इण्डिया प्रेस

गुलाटी.ए.के. (1996) काम्युनिटी बेस्ड स्ट्रेटेजीन् फॉर कामन प्रौपर्टी रिसोर्स मैनेजमैन्ट इन द हिमालायाज़ काठमाण्डू : इसीमोड

एच.पी. (1968) हिमाचल प्रदेश कोऑपरेटिव सोसाईटीज़ एक्ट शिमला हिमाचल प्रदेश स्टेट कोऑपरेटिव प्रिटिंग प्रेस

एच.पी. (1971) हिमाचल प्रदेश कोऑपरेटिव सोसाईटीज़ रूज्ल़ : शिमला, हिमाचल प्रदेश स्टेट कोऑपरेटिव प्रिटिंग प्रेस

एच.पी. (1972) हिमाचल प्रदेश सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज़ एक्ट : शिमला; सरस्वती पब्लिशिंग हाऊस

एच.पी.एफ.डी (1998) वर्कशॉप ऑन फॉर्मुलेशन ऑफ न्यू कॉम्युनिटी बेस्ड, पीपल ऑरिएण्टिड एफोरैस्टेशन स्कीन हैल्ड 27 से 28 ऑगस्ट 1998 शिमला; हिमाचल प्रदेश फॉरेस्ट डिपार्टमैन्ट

एच.पी.एफ.डी. (2000) आई.आई.इ.डी., डी.एफ.आई.डी, एग्जेक्टिव समरी, हिमाचल प्रदेश फॉरेस्ट सैक्टर रिब्यू शिमला : हिमाचल प्रदेश फॉरेस्ट डिपार्टमैन्ट

एच.पी.आर.डी (1991) हिमाचल प्रदेश लैण्ड कोड, शिमला हिमाचल प्रदेश रेवेन्यू डिपार्टमैण्ट

हचिन्सन, जे.वोगल.जे. हिस्ट्र ऑफ द पंजाब हिल स्टेट्स (वॉल्यूम ८) लाहौर, पंजाब : सुपरिन्टैन्डैन्ट गवर्नमैन्ट प्रिंटिंग

जोधा.एन.एस. (1990) ए फ्रेम वर्क ऑफ इन्टेग्रटिड माउन्टेन डिवैलपमैन्ट, काठमाण्डू : इसीमोड

मल्होत्रा.आर (1966) रिवाइज्ड वर्किंग प्लैन फॉर कांगड़ा फॉरेस्ट डिवीजन (1977-67 से 1980-81) वॉल्यम ८ एण्ड ८८ शिमला एच.पी. फॉरेस्ट डिपार्टमैन्ट

मैहता.जी.एम. (1942) वर्किंग प्लैन फॉर भगोटला कोआपरेटिव फॉरेस्ट सोसाइटी लिमिटिड (1943-43 से 1951-52) कांगड़ा, कांगड़ा फॉरेस्ट कॉपरेटिव सोसाईटीज़ डिवीजन

मोहन.वी.पी. (1998) ब्रीफिंग डॉक्युमैन्ट लिनेटिंग टू ए स्टडी ऑन "द एमैण्डमैन्ट ऑफ द गवर्नमैन्ट आर्डर ऑन पार्टिसपेटरी फॉरेस्ट मैनेजमैन्ट इन हिमाचल प्रदेश देहली डी.एफ.आई.डी. - आ.डी.ओ.

पैरी.जे. (1979) कास्ट एण्ड किनशिप इन कांगड़ा, लण्डन : रौऊटेलेज एण्ड केगन पॉल

रावल.आर.डी. (1968) इन्टैग्रेटिड वर्किंग प्लैन फॉर कांगड़ा फॉरेस्ट कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ (वॉल्यूम 1 एण्ड 2) शिमला, एच.पी. फॉरेस्ट डिपार्टमैन्ट

रौब्ब.पी. (इडी)(1992) रूरल इण्डिया-लैण्ड, पावर एण्ड सोसाइटी अण्डर ब्रिटिश रूल देहली ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस

सिंह.आर.ए. (1981) द रिवाज्ड वर्किंग प्लैन फॉर पालमपुर फॉरेस्ट डिवीजन फॉर द पिरियड (1981-82 से 1995-96 (वॉल्यूम 1 एण्ड 2) एच.पी. फॉरेस्ट डिपार्टमैन्ट

स्टेबिंग ई.पी. (1982) द फॉरेस्टस ऑफ इण्डिया वॉल्यूम 1 से 4 न्यू देहली ए. जे. रिप्रिट्स ऐजेन्सी

सूद.एम.पी. (1994) न्यू फॉरेस्ट्री इनिशिएटिब्ज़ इन एच.पी. शिमला, डिपार्टमैन्ट ऑफ फॉरेस्ट फार्मिंग एण्ड कंजर्वेशन

द.पंजाब गेज़ेटियर - कांगड़ा डिस्ट्रिक्ट (1883) कैलकेटा : कैलकेटा सैण्ट्रल प्रैस कम्पनी ।

वर्मा यू.एस. (1989) रिजनल डिवीजन्ज़ कार्टोग्राफिकल एनेलिसिज़ (सीरीज़ 1 वॉल्यूम 7) न्यू देहली : सैन्सस ऑफ इण्डिया, गवर्नमैन्ट ऑफ इण्डिया ।

परिशिष्ट 1 : कांगड़ा वन सहकारी सभाओं विषयक पृथक पृथक विवरण

क्र संख्या	के.एफ.सी.एस. गांव	पंजीकरण का वर्ष	प्रबन्ध स्थानान्तरण की तिथि	के.एफ.सी.एस. की आयु 1973 में	आरक्षित वन	सीमांकित संरक्षित वन	असीमांकित संरक्षित वन		वनमाफी	शामलात	निजी बंजर भूमि	मलकीयत शामलात	कुलक्षेत्र
01-	ढलूं	04-12-41	26-09-41	32 o"kZ	-	317	546	-	-	-	-	-	863
02-	दनोआ	04-12-41	25-09-41	32	-	248	640	-	-	45	-	-	933
03-	अरला	04-12-41	26-09-41	32	-	262	509	-	-	-	-	-	771
04-	पनापरी	06-12-41	12-02-42	32	-	275	254	-	-	-	-	-	529
05-	भनाला	16-11-41	26-09-41	32	-	468	364	-	-	-	-	-	832
06-	बासा-हरियाला	20-01-42	21-09-41	31	134	-	-	156	-	-	-	-	290
07-	पनिआला	02-11-42	26-12-42	31	-	-	1299	-	-	-	158	-	1457
08-	परौर	15-03-42	26-09-41	31	-	98	248	-	-	-	-	-	346
09-	भगोटिया	05-09-42	10-02-43	31	-	-	-	96	41	36	-	-	173
10-	मूहल	05-11-42	25-12-42	31	-	-	287	-	-	-	-	-	287
11-	घन्दरान	05-11-42	28-07-43	31	-	-	935	-	-	-	-	-	935
12-	कुसमल	06-12-42	04-09-95	31	-	-	-	181	137	-	-	-	318
13-	गगल	26-06-42	19-09-42	31	-	440	736	-	-	-	-	-	1176
14-	घुरकड़ी	24-08-42	06-01-43	31	-	81	73	-	-	-	-	-	154
15-	लोधवां	26-09-42	05-01-43	31	-	969	2406	-	-	-	-	-	3375
16-	इन्दपुर	17-11-42	03-04-43	31	-	294	1106	-	-	-	-	-	1400
17-	सुलयाली	02-10-43	08-08-44	30	-	-	790	-	-	-	-	-	790
18-	पुन्नर दैहण	21-02-43	13-10-44	30	-	93	246	38	-	140	-	-	622
19-	अरला सलोह	22-02-43	18-05-43	30	-	&	271	35	-	-	-	-	306
20-	खलेट	22-02-43	12-04-43	30	-	101	93	58	-	-	-	-	252
21-	सिरत	14-03-43	14-09-43	30	43	-	-	363	-	-	-	-	406
22-	घदोरल	15-06-43	01-11-44	30	-	-	-	-	-	15	-	-	15

क्र संख्या	के.एफ.सी.एस. गांव	पंजीकरण का वर्ष	प्रबन्ध स्थानान्तरण की तिथि	के.एफ.सी.एस. की आयु 1973 में	आरक्षित वन	सीमांकित संरक्षित वन	असीमांकित संरक्षित वन		वनमाफी	शामलात	निजी बंजर भूमि	मलकीयत शामलात	कुलक्षेत्र
23-	पलोहरा	08-12-43	15-11-45	30	-	320	402	-	-	-	-	-	722
24-	लाहड्डू	14-12-43	15-11-44	30	-	137	445	-	-	-	-	-	682
25-	गुम्बर	21-12-43	03-05-46	30	400	-	1112	-	-	-	-	-	1512
26-	गहीण-लगोड़	17-04-44	10-03-45	29	199	-	-	2295	-	-	-	-	2494
27-	शाहपुर	17-06-44	15-11-44	29	-	187	548	-	-	-	-	-	735
28-	पाइसा	16-07-44	28-08-45	29	294	-	-	1718	-	-	-	-	2012
29-	रे	16-07-44	30-12-44	29	-	-	2684	-	-	-	-	-	2684
30-	सराह	12-01-44	07-08-44	29	-	134	451	-	-	-	-	-	585
31-	इन्दौरा	01-03-45	24-04-45	28	-	-	146	-	-	-	-	-	146
32-	सनौर	01-03-45	24-04-45	28	-	-	305	-	-	-	-	-	305
33-	सुनहेत	16-01-45	06-11-45	28	-	-	193	-	-	-	-	20	213
34-	भगनारा	16-01-45	24-04-45	28	130	-	-	400	-	-	-	-	530
35-	कुलाहन	16-01-45	24-04-45	28	-	-	214	-	-	-	-	-	214
36-	जाछ	02-02-45	02-12-45	28	-	300	100	-	-	-	-	-	400
37-	देहरा गोपीपुर	13-03-45	09-08-46	27	-	-	-	-	-	-	-	986	986
38-	झिकली कोठी	21-03-45	15-05-47	27	-	-	1386	-	-	-	-	-	1386
39-	घनियारा	21-03-45	21-10-45	28	-	11582	1099	-	-	-	-	54	12735
40-	घन्टोल	21-03-45	13-07-45	28	-	98	272	-	-	-	-	-	370
41-	बाड़ी	28-06-45	13-12-45	28	-	-	215	-	-	-	-	-	215
42-	घरो	30-07-45	16-04-46	27	-	333	683	-	-	-	-	-	1016
43-	सुधेड़	30-07-45	16-04-46	28	-	228	470	-	-	-	-	-	698
44-	भलेटा	30-07-46	26-03-46	28	-	-	204	-	-	-	-	-	204
45-	बड़ाला	16-01-46	08-03-47	27	-	-	223	-	-	-	-	-	223

46-	भटोली	02-01-46	08-03-47	27	–	–	45	–	–	–	10	–	55
47-	दयोठी	15-04-46	25-10-49	27	–	–	435	–	–	–	–	–	435
48-	राजा–खासा	15-04-46	27-10-50	27	–	–	540	–	–	–	–	–	540
49-	त्रिप्पल	07-02-46	26-10-49	27	151	–	–	1348	–	–	–	–	1499
50-	मरण्डा भंगियार	29-01-47	15-05-47	26	–	–	93	4	–	–	–	–	97
51-	मनियारा	16-04-47	09-12-48	26	–	256	528	–	–	–	–	–	784
52-	सुक्कड़	26-07-47	30-03-49	27	–	–	–	–	–	–	50	–	50
53-	खोली	19-01-49	18-02-50	24	–	102	268	–	–	–	–	–	370
54-	मनिग्राओं	04-08-49	22-08-50	24	–	49	64	–	–	–	20	–	133
55-	बड़ूखर	23-05-49	31-03-50	24	–	–	313	–	–	–	–	–	313
56-	चनौर	23-05-49	08-09-50	24	–	–	–	–	–	–	46	–	46
57-	रियाली	23-05-49	08-09-50	24	–	–	–	–	–	–	85	–	85
58-	सिद्धबाड़ी	06-05-49	01-12-49	24	–	–	262	–	–	–	–	–	262
59-	थाना	06-05-49	27-03-50	24	–	–	148	–	–	–	–	–	148
60-	योल	06-05-49	01-12-49	24	–	31	606	–	–	–	–	–	637
61-	हरिपुर	13-05-50	25-05-50	23	–	–	–	–	–	–	318	–	318
62-	पट्टी	27-07-50	14-07-50	23	–	52	63	–	–	–	–	–	115
63-	डोहब	24-10-50	28-12-50	23	–	–	–	–	–	–	136	–	136
64-	जलोट	18-11-50	22-05-51	23	–	–	632	–	–	–	–	–	632
65-	गोलवां	12-10-50	21-08-51	23	–	–	286	–	–	–	–	–	286
66-	सलोल	18-12-50	07-08-51	23	–	–	1632	–	–	–	–	–	1632
67-	घराना	09-03-51	07-09-51	22	–	–	178	–	–	–	–	–	178
68-	बलोटा	25-01-52	29-10-54	21	–	–	116	–	–	–	–	–	116
69-	डगेरा	25-01-52	22-08-52	21	–	–	336	–	–	–	–	–	336
70-	टटाण–खुर्द	25-10-53	19-02-53	20	–	239	1513	–	–	–	–	–	1782
	कुल	–	–	–	1351	17694	30013	6692	178	236	823	1060	58282

परिशिष्ट: 2 सहकारी वन सभा (सीमित) के सदस्य द्वारा हस्ताक्षरित किए जाने वाला अनुबन्ध-पत्र (उर्दूमें)

मैं_____सपुत्र श्री_____
गांव _____डाकघर तहसील _____जिला सहकारी वन सभा (सीमित)_____ का सदस्य होने के नाते नीचे लिखी शर्तो का पालन करने के लिए सहमत हूँ ।

1. मैं सभा के नियन्त्रण में रखे गए वनों के प्रबन्ध के लिए समय-समय पर बनाई गई व सभा द्वारा स्वीकृत, व पंजाब सरकार द्वारा इसी उद्देश्य से बनाए गए उपनियमों व नियमों के अनुसार, पंजाब सरकार द्वारा अनुमोदित कार्ययोजना से आबद्ध रहुंगा और मै वचन देता हूँ कि कार्य योजना से प्रभावित होने वाली किसी सम्पति में अधिकार जिनका मैं स्वामी हूँ - वे सभा के अथवा पंजाब सरकार के अधीन कर दूंगा और वे सभा के अधिकारियों के माध्यम से सभी के नियमों व उपनियमों के अनुसार सभा के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन होगें । मै एक और सहमति देता हूँ कि मैं किसी भी क्षेत्र पर अपने अधिकार जिन्हें मैंने सभा के प्रशासनिक नियन्त्रण में दे दिया है - किसी गैर सदस्य को न स्थानान्तरित कंरूगा, न बेचूंगा, न गिरवी रखूगां और न दूंगा ।

2. मेरे द्वारा सभा के उपनियमों का उल्लंघन करने की सूरत में मैं सभा द्वारा इसके उपनियमों के अनुसार मुझ पर थोपा गया जुर्माना (100 रूपये से अधिक नहीं) देने का वचन देता हूँ ।

3. मेरी सदस्यता की समाप्ति की सूरत में मेरे भूमि पर अधिकार तब तक सभा के ही स्वामित्व में रहेंगे जब तक आगे निकाय के नियमित प्रस्ताव द्वारा मुक्त न किए जाएं ।

साक्षी

1.

2. _____
हस्ताक्षरित

परिशिष्ट 3: हिमाचल प्रदेश में, कांगड़ा वन सभाओं और संयुक्त वन प्रबन्ध के तुलनात्मक लक्षण (विशेषताएं)

विशेषताएं	कांगड़ा वन सहकारी सभाएं	संयुक्त वन प्रबन्ध
वन की किस्में	के.एफ.सी.एस. को सभी प्रकार के वनों, यथा आरक्षित वन, सीमाङ्कित वन, संरक्षित वन, असीमांङ्कित संरक्षित व अवर्गीकृत वनों के प्रबन्ध के अधिकृत किया गया था ।	बंजर और दुर्गति प्राप्त वन ही केवल ।
प्रबन्ध की इकाई	एक व्यवहारिक इकाई-समेत निजी स्वामित्व की भूमि के जो मालिक सभा के प्रबन्ध देना चाहे। राजस्व मौजा एक या एक से अधिक टीकें जो दो या दो से अधिक मौजों से लिए गए हो । छोटे मौजो पर बल दिया गया है ।	छोटे क्षेत्रों पर बल दिया गया है ।
आयु	आरम्भ में प्रयोग के रूप में पांच वर्ष के लिए बनाई गई फिर पुनर्वलोकन के बाद 1942 से 1973 तक चलती रही ।	आदेश में योजना की आयु का जिक्र नहीं है ।
भागीदारी की कसौटी	बन्दोवस्त के अनुसार अधिकार स्वामी, जो अधिकार स्वामी न हो भी सदस्य बन सकते हैं पर उन्हें सभा की आय में हिस्सा नहीं मिलता था क्योंकि वह अधिकार स्वामियों को ही दिए जाने का प्रावधान था ।	एक अधेड़ उम्र का मर्द और औरत प्रत्येक परिवार से वी.एफ.डी.सी. का सदस्य बन सकता है ।
लाभों की हिस्सा बांट	• 25 प्रतिशत बन्दोवस्त के मुताविक अधिकार स्वामियों को । • 25 प्रतिशत लाभ का वन विभाग को निरीक्षण शुल्क के रूप में । • 1 प्रतिशत रिजर्व निधि को । • 10 प्रतिशत वन सुधार निधि को । • 9 प्रतिशत समुदाय की भलाई के लए सामान्य भलाई निधि को । • 5 प्रतिशत सहकारी शिक्षा निधि बकाया सदस्यों में उनके अधिकारों के अनुपात में वितरण किया जाता था । इस तरह व्यक्तिगत आय के अधिकार की आज्ञा थी । नोट : अधिकार स्वामियों का हिस्सा उन द्वारा राजस्व विभाग को दिए जाने वाले राजस्व के अनुपात में तय होता है । मामला कहलाने वाला	अन्तिम फसल वसूली पर बिक्री से प्राप्त आय का 25 प्रतिशत वी.एफ.डी.सी. को दिया जाएगा और सामान्य निधि में रखा जाएगा - और वन मण्डल अधिकारी के परामर्श से और निकाय के अनुमोदन से गांव के विकास कार्यो पर खर्च किया जा सकता है । भोगाधिकार की वस्तुओं का वितरण बन्दोवस्त के अनुसार किया जाएगा यह वस्तुए हैं - ईधन की लकड़ी के अतिरिक्त वन उत्पाद । **बिरोजा** : यद्यपि आदेश में कोई जिक्र नहीं है, वर्तमान नीति बिरोजे से होने वाली आय में से वी.एफ.डी.सी. को हिस्सा देने की आज्ञा

विशेषताएं	कांगड़ा वन सहकारी सभाएं	संयुक्त वन प्रबन्ध
	यह राजस्व निजी भूमि की किस्म और परिणाम और इसकी आय संभावना पर आंका जाता है । मामला जितना अधिक हो उतना अधिक आय का हिस्सा सभा से मिलता था । सभी उपभोगाधिकार की वस्तुएं के.एफ.सी.एस. को नि:शुल्क मिलती थी । **बिरोजा** : वन विभाग द्वारा सेवा बिक्री से हुआ लाभ के.एफ.सी.एस. को मिला था । **खैर** : वन विभाग द्वारा पेड़ों की नीलामी से होने वाला लाभ 25 प्रतिशत जमींदारी हिस्से में जोड़ दिया जाता था ।	नहीं देती । **खैर** : आदेश में कोई जिक्र नहीं। हिस्सेदारी से निकाला गया-क्योंकि केवल दुर्गत वनों को ही जे.एफ. एम. में शामिल किया गया है । खैर की पैदावार वाले क्षेत्र जे.एफ. एम. के अन्तर्गत नहीं लाए जांएगे
गठन की प्रक्रिया	सभाओं के गठन के लिए विस्तृत नियम, प्रक्रियाएं और मार्गदर्शन-उपलब्धता कराकर यह सकेंत भी दिया गया है कि प्रक्रिया-बड़ी कड़ाई से अनुसरण न करके थोड़ा बहुत परिवर्तन किया जा सकता था फिर भी यह सुझाव दिया गया है कि-सदस्यों की भर्ती की प्रक्रिया गांव के एक दौर में ही समाप्त हो जानी चाहिए-बिना किसी अवरोध के।	जे.एफ.एम. सम्बन्धी सरकारी आदेश ही मात्र मार्गदर्शन है । अधिसूचना की तिथि से लेकर 3 वर्ष में भी प्रक्रियाएं और नियम जारी नहीं किए गए हैं ।
संस्थागत मामले	सहकारिता और राजस्व विभाग के सहयोग और सम्बन्ध पर निर्भर ।	आदेश अथवा विशिष्ट विभागों पर लगभग कोई निर्भरता नहीं ।
समानता की चिन्ताएं	सदस्य बनने की पहुंच और आय के बंटवारे में समानता के तत्व की अवहेलना की जाती थी । मामला, ही आय में से मिलने वाले हिस्से को निर्धारित करता था और इसीलिए बड़े-2 भूमिपतियों को सभा से आय का बड़ा हिस्सा मिलता था ।	सदस्यता सभी परिवारों को उनके भूमिस्वामित्व की अपेक्षा के बना मिल सकती है । अन्त्योदय परिवार से सदस्य भर्ती करना अनिवार्य है सकारात्म-समर्थन मुहैया करता है ।
झगड़ों का समाधान	सहकारिता विभाग की भूमिका पर विचार करता है-जिसके कर्मचारी सभा के बीच या दो सभाओं के बीच पनपने वाले झगड़ों का या मतभेदों का समाधान करते थे ।	वन मण्डल अधिकारी सामान्य सदन के परामर्श से ऐसे मामले निबटाएगा । अपील सुनने का अधिकार अरण्यपाल के पास होगा और वह एक मास के भीतर निणर्य देगा इससे ऊपर अपील की गुंजाइश नहीं ।
विघटन अथवा विलय	योजना को हर कुछ वर्षो के उपरान्त वन विभाग अधिसूचित करता था । किन्तु 1973 के बाद इसे पुन: अधिसूचित नहीं किया गया । सहकारी	वन मण्डल अधिकारी को वी.एफ. डी.सी. का पंजीकरण रद्द करने का पूरा अधिकार है ।

विशेषताएं	कांगड़ा वन सहकारी सभाएं	संयुक्त वन प्रबन्ध
	सभाएं होने के कारण के.एफ.सी.एस. का विलय वन विभाग नहीं कर सकता ।	
लिंग सम्बन्धी मामले	निर्णय लेने की प्रक्रिया में और सदस्यता में महिलाओं की भागीदारी का कोई जिक्र नहीं था पितृ-सत्ता-प्रणाली के अनुसार सभी भूमियां मर्दो के नाम होती थी । महिलाओं की सदस्यता लगभग शून्य थी-क्योंकि मामला देने वाले अथवा जिनके नाम जमीन थी वही सदस्य बन सकते थे।	प्रत्येक सदस्य परिवार से एक महिला को सदस्यता मिलना 50 प्रतिशत महिलाओं की कार्यकारिणी में सदस्यता का प्रावधान है । एक महिला मण्डल सदस्य को भी कार्यकारिणी में सदस्य बनाना/मनोनीत करने की आज्ञा देता है ।
वित्तीय अनुदान	सभाओं को सहायक अनुदान का प्रावधान है ।	सरकारी आदेश में किसी प्रकार की वित्तीय सहायता का प्रावधान नहीं किया गया है ।
वन प्रबन्ध	सभाओं के अन्तर्गत लाए गए वनों के लिए कार्ययोजना सभा के सदस्यों के परामर्श से बनाने का प्रावधान । प्रत्येक सभा के लिए पृथक कार्ययोजना और समेकित कार्ययोजना और सभी के.एफ.सी.एस. के लिए बनाना वन विभाग की जिम्मेदारी थी ।	समिति सदस्यों के सहयोग से एक प्रबन्ध योजना जे.एफ.एम. के अन्तर्गत लाए गए क्षेत्रों के लिए बनाने का निर्देश है -कार्ययोजना की अवधि विशिष्टतया नहीं बताई गई
कानूनी स्थिति	कानूनी स्थिति-आरम्भ में पंजाब सहकारिता अधिनियम 1912 के अधीन थी - अब हि.प्र. के 1968 के अधिनियम के अधीन है ।	समितियां केवल वन मण्डल अधिकारी के पास करवाई जाती है और उसे वी.एफ.डी.सी. को विलय करने की शक्तियां प्राप्त है । और किसी अधिनियम के अधीन पंजीकरण का प्रावधान नहीं ।
कोरम	कार्यकारिणी समिति: सात से अधिक सदस्य न हों तो 3 सदस्य कोरम माने जाते थे जब कभी आवश्यकता हो तो बैठक आयोजित कर लेने का प्रावधान था ।	कार्यकारिणी समिति एक वर्ष में चार बैठके करना वांछित कोरम संख्या 50 प्रतिशत जो 9 से 12 तक हो सकती है ।
सामान्य निकाय	सामान्य निकाय के एक तिहाई सदस्य अथवा 30 सदस्य कोरम माने जाते है वर्ष में एक बैठक करना वांछित	वर्ष में दो बैठके करना वांछित 50 सदस्य संख्या कोरम माने गए है ।
प्रतिनिधित्व	विभन्न समूहों की वृहद-आधार वाले सहयोग को सुनिश्चित कने (समिति गठन या निर्णय लेने में) के बारे कोई विवरण नहीं	दिलचस्पी रखने वाले समूहों के छोटे वर्गो की गांव के बैठके-उनकी सदस्यता से भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक मानी गई

विशेषताएं	कांगड़ा वन सहकारी सभाएं	संयुक्त वन प्रबन्ध
		हैं ।
सदस्य सचिव	सहकारी सभा अधिनियम के अनुसार सभा के सदस्यों द्वारा ही सचिव की नियुक्ति किए जाने का प्रावधान था	वन रक्षक की पदेन सचिव माना गया है वन रक्षक के कर्त्तव्यों का विशेष विवरण नहीं दिया गया है।
सदस्यों के उत्तरदायित्व व कर्त्तत्य	कार्ययोजना के अनुसार सभा के अन्तर्गत आने वाले वनों में वनरोपण करने, सुधार लाने, संरक्षण करने व प्रबन्ध करके की जिम्मेवारी-भूक्षरण को रोकना व-सदस्यों के पूर्ण लाभ के लिए वन उत्पादों का सदुपयोग पर विशेष बल दिया गया है- इसके साथ जिम्मेवारियों में सहकारिता सिद्धान्तों पर प्रक्रियाओं सम्बन्धी जानकारी का प्रसारण भी शामिल है ।	वन-विभाग की वनरोपण में सहायता करना-कार्ययोजना का पालन करना, वन प्रबन्ध-भोगाधिकार की वस्तुओं को सदस्यों में बांटना व झगड़ों का निपटारा करना मुख्य जिम्मेंवारियां ।

लेखक के विषय में

राजीव अहल का जन्म, अपने पैतृक गांव पपरोला, तहसील-बैजनाथ, जिला-कांगड़ा, हि.प्र. में सन् 1964 ई. में हुआ । उन्होंने इलैक्ट्रिकल इंजनीयरिंग में स्नातक की डिग्री दिल्ली से 1987 में प्राप्त की । वह पर्यावरण एवं ग्रामीण विकास के लिए कार्यरत है । 1994 से वह, आन्दोलनकर्त्ताओं, विद्वानों और स्वंयसेवी संस्थाओं को राज्य स्तर पर गतिशील करने में लगे हैं । यह कार्य नवरचना नामक मंच के माध्यम से किया जा रहा है । नवरचना एक राज्य स्तरीय मंच है, जिसमें सहभागी और सामुदायिक-अभिशासन प्रक्रियाओं को मजबूत करने और टिकाऊ-प्राकृतिक-संसाधन प्रबन्ध में जुटे लोगों और संस्थाएं शामिल है। उन्होंने "समृद्धि" नामक महिला-सहकारी सभा के निर्माण और गठन में भी सहयोग किया है । इस सहकारी सभा द्वारा हि.प्र. के दो जिलों में गरीब और सीमान्त महिलाएं आस-पास के फालतू वन उत्पादों पर आधारित सफल व उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर व्यावसायिक उपक्रम चला रही है, जिससे उन महिलाओं का सशक्तिकरण तो हुआ ही है, आजीविका भी प्राप्त हो रही है ।